न्ति न करते तो श्रमण सस्कृति की आज
ो। मुनि श्री ने समाज को प्रेरणा देते हुए
र्य की यह कर्म व धर्म भूमि रही है अत
चिर स्थायित्व प्रदान करने के लिए कोई
कार्य हाथ मे लिया जाना चाहिए।

सर पर गणेशाचार्य शताब्दी के उपलक्ष मे
पद यात्रियो का सघ की ओर से माल्यार्पण
कर सम्मान किया गया।

ा सचालन डॉ सुभाप कोठारी ने किया।
१०१ (एक सौ एक) तेले की, तपस्या की

जैन मित्र मंडल ट्रैक्ट नम्बर १४३

प्रकाशित जैन साहित्य

संयोजक

श्री पन्नालाल जैन अग्रवाल

सम्पादक

श्री ज्योतिप्रसाद जैन

एम. ए., एल एल. बी. (पी. एच डी.)

प्रकाशक

जैन मित्र मंडल, दिल्ली

प्रकाशक
जैन मित्र मंडल
धर्मपुरा, दिल्ली

मुद्रक
श्री देशभूषण प्रेस,
१, एप्सलेनेड रोड. दिल्ली - ६

विषयानुक्रम

प्रकाशकीय वक्तव्य

आज से ४३ वर्ष पूर्व समाज के कुछ नवयुवको के हृदय मे जैन धर्म के सिद्धान्तो के प्रचार की भावना जागृत हुई। उन्होने ३० मार्च १६१५ को इस संस्था की नींव 'जैन मित्र मण्डल' के नाम से देहली मे डाली। जैन मित्र मण्डल ने अब तक केवल एक ही उद्देश्य रखा है और वह है 'जैन धर्म का साहित्य द्वारा प्रचार'। मण्डल का सारा कार्य, मण्डल की सारी लगन और उसकी—सारी चिन्ताए इसी दिशा मे लगी रही हैं।

२ मण्डल ने अपने शैशव काल के ६ वर्षों में ही जैन धर्म तथा साहित्य-प्रचार मे इतना अधिक कार्य किया कि सन १६२१ की सरकारी जनगणना census मे इसको भारत की 'Chief jain literary Society' 'प्रमुख साहित्यिक संस्था' घोषित किया गया।

३. जैन मित्र मण्डल जिस समय दो वर्षों का ही था इसने भारत-प्रसिद्ध देहली शास्त्रार्थ "ईश्वर-कर्तृत्व और तीर्थंकर सर्वज्ञ हो सकते हैं या नही" इस विषय पर 'आर्यकुमारसभा' से देहली मे किया।

४. अभी मण्डल इस कार्य से निबटा ही था कि डाक्टर गौडने 'हिन्दू कोड' 'Hindu Code' नाम की एक पुस्तक लिखी जिसमे जैन धर्म तथा जैनों के विषय मे बहुत सी गलत बातें लिख डाली। यह पुस्तक भारत सरकार द्वारा मान्यता दी जाने को ही थी कि मण्डल ने इस विषय मे आन्दोलन चलाया और एक पृथक 'जैन कोड' बनाने का विचार किया। डाक्टर गौड के आक्षेपो का करारा उत्तर दिया। दो पुस्तकें 'Jainism and Hindu Code' और 'Jains of India and Dr. H. S Gour' प्रकाशित की। इस सबके फलस्वरूप डा० गौड ने अपनी पुस्तक की दूसरी आवृत्ति मे अपनी गलतियो को ठीक किया।

५. मण्डल ने, अपनी स्थापना के १० वर्ष पश्चात् यह कटु अनुभव किया

कि जहाँ देश मे अन्य सर्व धर्मों के प्रवंतको के-भगवान कृष्ण, राम, मोहम्मद, ईसा, गुरु नानक के—जन्म उत्सव वडी धूमधाम से मनाये जाते हैं वहाँ जैन धर्म के किसी भी तीर्थंकर का जन्म उत्सव नही मनाया जाता, इसी भावना से श्रोत प्रोत होकर जैन मित्र मण्डल ने सर्व प्रथम सन् १९२५ मे 'महावीर जयन्ती महोत्सव' देहली मे मनाया जिसमे मौलाना मोहम्मद अली, महात्मा भगवानदीन, प० अर्जुनलाल सेठी जैसे विद्वानो के भाषण हुए। समाज मैं इस प्रकार के उत्सव मनाने पर विरोध भी हुआ, मडल के कर्मठ सैनिकों को आक्षेप भी सहने पडे; परन्तु उत्सव की उपयोगिता तथा उसकी सफलता ने उनके उत्साह को बढाया और उसके बाद ३३ वर्षों मे मंडल ने महावीर जयन्ती को एक बहुत ही प्रभावशाली, सुन्दर आकर्षक तथा सार्वजनिक रूप दे डाला।

आज मण्डल को इस बात का गौरव है कि समस्त भारत में महावीर-जयन्ती मनाने तथा मनवाने का श्रेय इसी संस्था को है।

महावीर जयन्ती को अधिक से अधिक उपयोगी बनाने के हेतु मडल कविसम्मेलन, सगीतसम्मेलन, उर्दू मुशायरा तथा व्याख्यानो का बड़ा ही सुन्दर तथा रोचक प्रोग्राम रखता है। इस अवसर पर मडल भारत के राष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री, विदेशो के राजदूत, भारतसघ के मन्त्रीगण, भारत राज्य के राज्यपालो तथा अन्य सभी जाति तथा धर्म के नेताओ को आमंत्रित करता है और उनसे इस आयोजन के विषय मे तथा भगवान महावीर के सिद्धान्तों व आजके युग मे उनकी आवश्यकता पर सुन्दर तथा प्रभावशाली लेख तथा सन्देश मगाता है और उन्हे सहस्रो की सख्या मे प्रकाशित कर देश तथा विदेशों मे वितरण करता है।

६. जैन मित्र मडल देहली जैन समाज मे पुस्तक प्रकाशन में एक अद्वितीय स्थान रखता है। मडल ने अपना उद्देश्य जैन धर्म के शास्त्रो के प्रकाशन का नही रखा बल्कि इसने अंग्रेजी नागरी तथा उर्दू मे नये प्रकार के सहित्य का निर्माण कराया। आज के युग मे जनता के पास इतना भी समय

नही है कि वह अपने धर्म के मोटे मोटे शास्त्रों को पढ सके, आज का युग चाहता है छोटी छोटी पुस्तकें जो कि वह अवकाश के समय सुगमता से पढ सकें। मंडल ने अपनी कार्य पद्धति इसी ओर रखी। उसने समाज के प्रकाण्ड विद्वानो से, जैन ही नही किन्तु अजैनो से भी जैनधर्म तथा इसके सिद्धान्तो पर छोटे छोटे ट्रैक्ट लिखवाए, जिनको हजारो की सख्या मे प्रकाशित कर विना मूल्य देश-विदेशो तथा जैन व अजैन जनता मे वितरण किया। ससार का कोई भी देश ऐसा नही होगा जहाँ जैन मित्र मडल के ट्रैक्ट न पहुचे हों। इस प्रकार की १४२ पुस्तकें मंडल प्रकाशित कर चुका है। शायद कोई ही दूसरी ऐसी जैन सस्था होगी कि जो इतने 'पुष्प' अबतक प्रकाशित कर सकी हो।

७ पिछले वर्ष साहित्य प्रचार मे जैन मित्र मडल ने एक बहुत ही बड़ा कदम उठाया। ससार को चकित कर देने वाला राष्ट्रपति द्वारा कहा गया 'ससार का आठवाँ आश्चर्य' ७१८ भाषामयी ग्रन्थराज 'भूवलय' के प्रकाशन का कार्य इस सस्था ने उठाया। और गत वर्ष 'इसका मगल प्राभृत' 'इसके कतिपय सारगर्भित श्लोक' तथा इसमे अन्तर्गत 'भगवद्गीता' नाम की तीन पुस्तकें प्रकाशित कीं जिनका उदघाटन कांग्रेस के मनोनीत अध्यक्ष श्री ढेबर भाई ने आचार्य श्री १०८ देशभूषण जी महाराज की उपस्थिति मे किया।

८. मण्डल के पास सदैव 'जैनसाहित्य' के विषय मे पारप्रश्नात्मक पत्र आते रहते हैं और जैन धर्म जानने तथा जैन साहित्य के पढने के इच्छुक सदैव जैन साहित्य की मांग जैन मित्र मडल से करते रहते हैं। अब तक 'दिगम्बर जैन समाज' मे इस प्रकार की कोई पुस्तक या सूची नहीं थी कि जिससे प्रकाशित जैन साहित्य का पता चल सकता हो। इसी कमी को दृष्टि मे रखते हुए जैन समाज के सर्व अधिक 'मूक' तथा ठोस सेवक ला० पन्नालाल जी अग्रवाल देहली द्वारा सयोजित तथा प्रसिद्ध ऐतिहासिक लेखक डा० ज्योति-प्रसाद जी लखनऊ द्वारा सम्पादित 'प्रकाशित जैन साहित्य' की सन् १९४५ तक की यह सूची प्रकाशित करते हुए हमें बड़ा हर्ष हो रहा है। हम इन दोनो ही के बहुत कृतज्ञ हैं कि उन्होंने इसमें अपना अमूल्य समय देकर यह पुस्तक

सम्पादित की है। साथ ही हम आचार्य श्री जुगलकिशोर जी मुख्तार अधिष्टता वीरसेवामन्दिर, श्री वासुदेवशरण जी अग्रवाल, प्रोफेसर बनारस विश्व-विद्यालय तथा डा० हीरालाल जी अध्यक्ष प्राकृत विद्यापीठ मुजफ्फरपुर (बिहार) के भी बहुत आभारी है जिन्होने इस पुस्तक के प्रास्ताविक, प्राक्कथन, प्राथमिक लिखकर इस पुस्तक की उपयोगिता को बहुत बढा दिया है। श्री पं० परमानन्द जी तथा श्री मुनीन्द्रकुमार जी ने इस पुस्तक के कुछ प्रूफ देखे हैं, जिसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं

हम श्री रामचद्र जैन भारत सरकार **valuation officer**, पुन-र्निवास मत्रालय तथा श्री अखिल भा० दिगम्बर जैनकेन्द्रीय महासमिति, देहली के आभारी हैं जिन्होने इस पुस्तक के प्रकाशन मे १३१ क्रमश. तथा ५१) दान देकर इस पुस्तक की उपयोगिता को अपनाया है।

हमे आशा है कि पुस्तक की उपयोगिता से जनता प्रभावित होकर इस पुस्तक को अपनायेगी।

अजितप्रसाद जैन ठेकेदार सभापति
महताबसिह जैन महामन्त्री

आदीश्वरप्रसाद जैन मन्त्री
पन्नालाल जैन मंत्री
जैन मित्र मडल, धर्मपुरा, देहली

प्राथमिक

जैन संस्कृति की धारा बहुत प्राचीन और महत्त्वपूर्ण है। किन्तु दुर्भाग्यतः जैन धर्मानुयायी अपनी वस्तु को स्थिर रूप देने व उसे ससार के सम्मुख उपस्थित करने मे बहुत शिथिल और दीर्घसूत्री रहे हैं। उदाहरणार्थ, जबकि वैदिक परम्परा के ग्रंथ कम से कम चार हजार वर्ष पुराने पाये जाते हैं, तब महावीर भगवान से पूर्व का कोई जैन साहित्य सुरक्षित नही है। भगवान महावीर की वाणी को उनके शिष्यो ने उन्ही के जीवन-काल मे द्वादशांग रूप रच लिया था, ऐसी जैन श्रुत-परम्परा है। किन्तु इसे कोई एक हजार वर्ष तक लिखित रूप नही दिया जा सका। दिगम्बर परम्परानुसार तो वह समस्त द्वादशांग श्रुत कोई छह सातसो वर्षो मे ही क्रमशः विस्मृत और विलुप्त हो गया, और जो रहा उसके आधार पर नये सिरे से षट्खडादि ग्रंथो की रचना की गई। श्वेताम्बर परम्परा मे महावीर निर्वाण से लगभग एक हजार वर्ष पश्चात् उसके बचे खुचे अंशो का सकलन कर उन्हें पुस्तको का रूप देने का प्रयत्न किया गया।

चीन देश में ग्रंथो के मुद्रण का कार्य नौवी शती मे प्रारम्भ हो गया था। यूरोप मे मुद्रण कार्य पन्द्रहवी शती में तथा भारत में सोलहवी शती में प्रारम्भ हुआ। किन्तु जैन ग्रथो का प्रकाशन सन १८५० से पूर्व का कोई नही पाया जाता। अभी अभी तक धार्मिक ग्रथो के मुद्रण का समाज में विरोध भी होता रहा है। आज सभ्य ससार का उपलब्ध प्राचीन साहित्य प्रायः समस्त ही प्रकाशित हो चुका है और उसके प्रमुख भाग अन्य भाषाओ मे भी अनुदित हो गये हैं। किन्तु एक जैन साहित्य ही ऐसा है जिसका अति प्रचुर भाग, नष्ट होते होते जो कुछ बचा है, वह अभी भी शास्त्र भडारो की अंधेरी कोठरियो में बन्द पडा है। यह दशा आज सभ्यता के विकास की दृष्टि से नितान्त शोचनीय है। हमारी साहित्यिक निधि का लेखा-जोखा लगाने मे और

दशा सुधारने मे प्रस्तुत पुस्तक बहुत उपयोगी सिद्ध होगी, इसमे सन्देह नही।

श्रीयुत पन्नालाल जैन अग्रवाल जैन साहित्य की बहुत कुछ सेवा कर चुके हैं और उन्हें जैन साहित्य प्रकाशन का खासा परिचय है। प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने जैन साहित्य की प्रकाशित हिन्दी, सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश आदि भाषा की रचनाओ की अकारादि क्रम से सक्षिप्त सूची प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। इसके आधार से साहित्यक विद्वान जैन प्रकाशन की गति-विधि का पता लगा सकेंगे। जिन्हे ग्रथ-संग्रह करना है वे इसके द्वारा अपने पुस्तकालय को पूर्णता की ओर अग्रसर कर सकते हैं। और जिन्हें यह समझना है कि अभी भी कितना साहित्य प्रकाशित होना शेष है, वे इस सूची मे उल्लिखित आधुनिक रचनाओ के अतिरिक्त प्राचीन सस्कृत की केवल १८०, प्राकृत की ४४, अपभ्रंश की १८ और प्राचीन हिन्दी की २७५ पुस्तकों को डा० वेलणकर कृत 'जैन रत्न कोश' तथा विविध जैन भडारो की नई सूचियो आदि से मिलान कर देखें, तो उन्हें पता चलेगा कि अभी भी सैकडो नही सहस्रो प्राचीन जैन रचनायें अधेरे मे पडी हुई हैं। इस सूची की भूमिका रूप जो "जैनियों की साहित्य सेवा और प्रकाशित जैन साहित्य" शीर्षक निबन्ध सम्पादक द्वारा प्रस्तुत है वह अपने विषयगत बहुत महत्वपूर्ण सामग्री को लिए हुए है।

मैं इस ग्रथ का हृदय से स्वागत करता हू और उसके सयोजक, सम्पादक तथा प्रकाशक और साथ ही वीर सेवा मन्दिर को, जिसके तत्त्वावधान में सम्पादन का सब कार्य सम्पन्न हुआ है, विशेष धन्यवाद देता हुआ यह आशा करता हूं कि इसके द्वारा भविष्य मे जैन साहित्य के प्रकाशन और प्रसार का मार्ग अधिक प्रशस्त बनेगा।

१४-२-१९५८

मुजफ्फरपुर

हीरालाल जैन

डायरेक्टर 'प्राकृत जैन विद्यापीठ'

प्राक्कथन

श्री पन्नालाल जैन की इस छोटी किन्तु उपयोगी पुस्तक का मैं स्वागत करता हूं। इसमें जैन वाङमय के क्षेत्र मे अब तक के साहित्यिक कार्य का अच्छा परिचय दिया गया है। उस वर्णन मे पर्याप्त जानकारी का सग्रह है। श्री पन्नालालजी ने अध्यवसाय पूर्वक अपने आप को उस विभाग से अद्यावधिक अवगत रक्खा है। जहाँ तक भारतीय सस्कृति और वाङ्मय का सम्बन्ध है हम उसके अखंड स्वरूप की आराधना करते हैं। ब्राह्मण और श्रमण दोनों धाराओ से उसका स्वरूप सम्पादित हुआ है। श्रमण सस्कृति के अतर्गत जैन संस्कृति साहित्य, धर्म, दर्शन, कला इन चार क्षेत्रों में अति समृद्ध सामग्री प्रस्तुत करती है। नई दृष्टि से उसका अध्ययन और प्रकाशन आवश्यक है। यह देखकर प्रसन्नता होती है कि जैन विद्वान् निष्ठा के साथ इस कार्य में लगे हैं। उनके प्रयत्न उत्तरोत्तर फलवान् हो रहे हैं। प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं की सामग्री मे तो अब प्राय देश के सभी विद्वानो की अभिरुचि बढ रही है।

यह समय परिपक्क है जब इन ग्रंथो को नए ढंग से संशोधित रूप में सम्पादित करके प्रकाशित किया जाय। जो कार्य अब तक हुआ है उसका एक लेखा-जोखा जान लेने पर नवीन कार्य की प्रेरणा प्राप्त हुआ करती है। इस दृष्टि से यह वृत्तान्त उपयोगी है। इसके अन्त में जैन भंडारों और पुस्तकालयों की एक सूची जोड दी जाय तो और अच्छा रहेगा। हमे यह देखकर आनन्द होता है कि सरस्वती भंडारो के स्वामी और प्रबन्धक अब प्राय उदार दृष्टिकोण अपनाने लगे हैं। सम्पादन और प्रकाशन के लोकहितकारी कार्यों मे उन से मिलने वाले सहयोग की मात्रा बढ़ रही है। इस महती शताब्दी के उत्तरार्ध मे जैन साहित्य के समुचित प्रकाशन की धारा और अधिक वेगवती बन सकेगी, ऐसी आशा होती है। अनेक केन्द्रो से वितत कार्य के सूत्रो का सम्मिलित पट और सुन्दर बनेगा, ऐसे शुभ लक्षण प्रकट हो रहे हैं। इस समय जो विद्वान

श्रोर जो सस्थाए इस पुनीत कार्य से सलग्न हैं उनकी नामावली ग्रंथ के प्रारम्भिक भाग मे आ गई है उन–उन विशिष्ट मित्रों के यशस्वितम परिश्रम को दृष्टि पथ मे लाते हुए मन आश्वस्त होता है कि इस वाङ्मय रूपी कल्प वृक्ष का अगले पचास वर्षों मे शतश. सहस्रश. विस्तार सम्भव हो सकेगा।

यद्यपि प्राचीन आगम साहित्य प्रकाशित हो चुका है, किन्तु उसको निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य, टीका आदि के साथ अभिनव रूप मे भूमिका, टिप्पणी, शब्दानुक्रमणी आदि के साथ पुन: प्रकाशित करने के कार्य शेष ही है। जब वे इस रूप मे उपलब्ध होंगे तभी उनसे सास्कृतिक सामग्री के दोहन का कार्य पूरा किया जा सकेगा। इस युग का महनीय उद्देश्य तो भारतीय राष्ट्र का सर्वांग पूर्ण सांस्कृतिक इतिहास है। यह कितना विशाल कार्य और कैसा उदात्त लक्ष्य है इसकी कल्पना सहसा मन मे नही आती। किन्तु अभी तो कार्य का आरम्भ मात्र है। सांस्कृतिक इतिहास के निर्माण की कला अभी विकसित होने लगी हैं। यह महान् कार्य अनेक सकल्पवान् साधको की अपेक्षा रखता है। एक-एक शब्द का मूल्य मणिमुक्ता की भाँति चतुराई से परखना होगा, उसके सूत्रो को बौद्ध साहित्य, सस्कृत साहित्य एव प्रादेशिक भाषाओ के साहित्य मे ढूढना होगा। तब सब की सम्मिलित आभा से ऐतिहासिक के मन मे अर्थों का पूरा आलोक प्रकट हो सकेगा। इसकी कल्पना से ही रोमाञ्च होता है। भारत के भावी इतिहासकारो के लिए सास्कृतिक सामग्री के सुमेरू स्तब्ध खडे हैं, जिनकी परिक्रमा लगानी होगी। हम जिस दृष्टि कोण की कल्पना कर रहे हैं उसमे इतिहास, साहित्य, सस्कृति, कला, धर्म, दर्शन और जीवन-परम्परा–इन सात सूत्रो को एक साथ मिलाकर भारती महाप्रजा के राष्ट्रीय पुरावृत्त का दिव्य इन्द्रायुधाम्बर सम्पन्न करना होगा। यहाँ अभेद, समन्वय, सप्रीति का दृष्टिकोण मुख्य है। काल के प्रवाह मे जो कुछ बचा रह गया है वह मात्रा मे कितना विस्तृत है इसकी टकसाली साक्षी जैन शास्त्र भडारो में उपलब्ध ग्रथ राशि से प्राप्त हुई है। श्री वेलणकर द्वारा सगृहीत 'जिनरत्नकोश' इस क्षेत्र का भव्य प्रयत्न है। यह

जानकर प्रसन्नता होती है कि वीर सेवा मंदिर दिल्ली की ओर से लगभग
६००० अप्रकाशित ग्रन्थो की एक सूची तैयार कराई गई है। राजस्थान के
भंडारो की छान बीन श्री कस्तूरचन्द्र कासलीवाल और श्री अगरचन्द नाहटा
बराबर आगे बढा रहे हैं। आशा है अगले बीस वर्षों में भंडारो के पर्यवेक्षण
का कार्य पूरा कर लिया जायगा। और तदनुसार प्रकाशन की शक्तिशाली
योजनाएं भी राष्ट्र में बन जाएंगी।

इस पुस्तक मे प्रकाशित जैन साहित्य की एक अकारादि क्रम से नाम सूची
सग्रहीत की गई है। इसमे लगभग २७०० पुस्तको का सक्षिप्त परिचय
दिया है। तैयार यादी की भांति यह सूची पाठकों के लिये उपयोगी रहेगी।
जो ग्रथ इस सूची मे छूट गए हों उनके नाम भी अपनी जानकारी के अनुसार
जोड लिए जा सकते हैं। श्री पन्नालाल जी का यह उत्साहमय प्रयत्न बहुत
अच्छा है।

वासुदेवशरण अग्रवाल

काशी विश्वविद्यालय

फाल्गुन शुक्ल १२, स० २०१४
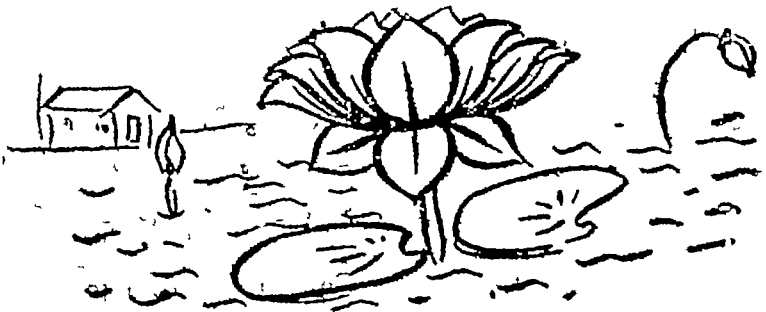
संकेत-सूची

अ० नु०=अनुवाद-अनुवादक
अप०=अपभ्रंश
अं०=अंग्रेजी
आ०=आवृत्ति, आचार्य
ई०=ईस्वी
का० ती०=काव्यतीर्थ
गु०=गुजराती
जि०=जिला
टी०=टीका-टीकाकार
डा०=डाक्टर
दा० वी०=दानवीर
दि०=दिगम्बर
नं०=नम्बर
न्या० आ०=न्यायाचार्य
न्या० ती०=न्यायतीर्थ
न्या० लं०=न्यायालंकार
पं०=पंडित
पृ०=पृष्ठ
प्र०=प्रकाशक-प्रकाशित
प्रा०=प्राकृत
प्रो०=प्रोफेसर
बा०=बाबू
ब्र०=ब्रह्मचारी
भा०=भाषा
म० र०=महिलारत्न
मा०=मास्टर
मि०=मिस्टर
मु०=मुन्शी
मू०=मूल्य
ले०=लेखक-लेखिका
व०=वर्ष
वा०=वार्षिक
वि० र०=विद्यारत्न
स० भ०=सत्यभक्त
स०=संस्कृत, संपादक
सक०=संकलनकर्ता
संग्र०=संग्रहकर्ता
संपा०=संपादक-संपादिका
संशो०=संशोधक
सा० आ०=साहित्याचार्य
सा० र०=साहित्यरत्न
सि०=सिद्धांत
सि० च०=सिद्धांत चक्रवर्ती
सि० शा०=सिद्धांत शास्त्री
से०=सेठ
स्व०=स्वर्गीय
हि०=हिन्दी
Ed = Editor, Edited
Trad. = Translated
Pub = Publisher
Tr. = Translator
Dj = Digambar jain
C.R. = Champat Rai
J.L. = jagmander lal
G.R. = Ghasi Ram

प्रास्ताविक

इस पुस्तकके सयोजक बा० पन्नालालजी जैन अग्रवाल अपने चिर-परिचित मित्र हैं। आप बडे ही सेवाभावी और साहित्य-प्रेमी सज्जन हैं—साहित्य-सेवियो को अपनी सेवाएं प्रदान करनेमे सदा ही उदार एवं परिश्रम-शील रहा करते हैं। कई वर्ष तक आप वीर-सेवा-मन्दिरके मत्री रह चुके हैं। इस पुस्तक का आयोजन भी आपके उक्त मंत्रित्व-कालमे ही हुआ है। पुस्तक के प्रयोजनादि-सम्बन्धकी कुछ रोचक-कथा इस प्रकार है, जिसे उन पत्रोसे जाना जाता है जिन्हें संयोजकजीने अपने पास सुरक्षित रख छोडा है—

डा० माताप्रसादजी गुप्त एम० ए० प्रयाग सन् १९४३ मे 'हिन्दी पुस्तक-साहित्य' नामकी एक ग्रन्थसूची लिख रहे थे, जिसमे हिन्दीकी चुनी हुई पुस्तकोका परिचय उन्हें देना था और वह भी सन् १८६७ से १९४३ तक १०० वर्ष के भीतर प्रकाशित पुस्तकोका—लिखितका नही। नवम्बर १९४३ मे डा० साहब के तीन पत्र बा० पन्नालालजी (सयोजकजी) को प्राप्त हुए, जिनमे यह इच्छा व्यक्त की गई कि यदि हिन्दीके जैन ग्रन्थोकी कोई अभीष्ट सूची उनके पास तय्यार हो या वे तय्यार कराके दे सकें तो उसका उपयोग उक्त सूची में किया जा सकता है। इन पत्रों पर से सयोजक-जीको हिन्दी जैन ग्रन्थोकी एक ऐसी सूची तय्यार करनेकी प्रेरणा मिली जिसमें वे ग्रन्थ भी शामिल थे जो मूलत भले ही सस्कृत-प्राकृतादि भाषाओं में हो परन्तु उनके अनुवादादिक हिन्दी भाषामे लिखे गये हो। तदनुसार उन्होंने हिन्दी जैन ग्रन्थो की एक सूची तय्यार की और उसे देखने-जांचने के लिये मेरे पास सरसावा वीर-सेवा-मन्दिर मे भेज दिया। यह सूची अपने को जनवरी १९४४ के प्रतमे प्राप्त हुई और उसे संस्था के विद्वान पं० परमा-नन्दजीको जाँच आदि के लिये सुपुर्द कर दिया गया। पं० परमानद जीने

जाँचने, सुधारने और कितने ही नये ग्रंथो की उसमे वृद्धि करने के वाद उसे फर्वरी के अन्त मे वापिस कर दिया और वह दूसरी मार्चको डा० सा० के पास प्रयाग भी पहुच गई, जिसकी पहुच देते हुए डा० मा० ने सूची को वडे ही परिश्रमसे तैयार हुई बतलाया और अपनी सूची के प्रेस चले जाने की सूचना करते हुए यह परामर्श दिया कि यदि विषयो के अनुसार वर्गीकृत होकर वह अनेकान्त (मासिक) मे प्रकाशित हो जावे तो वडा अच्छा हो। साथ ही उसी पत्र तथा २० मार्च के पत्र मे यह आश्वासन भी दिया कि वे यथा सभव उस सूची का उपयोग करके उसे वापिस लौटा देंगे। १६ अप्रेल १९४५ से पहले तक यह सूची वापिस नही लौटी, २२ जुलाई तथा २ नवम्बर के पत्र में सूची के उपयोग-सम्ब ध मे इतनी ही सूचना की गई—'सूची जरा देर से प्राप्त हुई थी इस कारण उससे पूरा लाभ नही उठा सका । आपकी सूची के प्राचीन ग्रथों स नितान्त अपरिचित होने के कारण कुछ को चुनना और शेष को छोड़ना ठीक नहीं लगा। आधुनिक ग्र थों मे से जो महत्व पूर्ण हैं उनमे से अधिकाश मेरी सूची मे पहले से थे। जैनधर्मका परिचय कराने वाले आधुनिक ग्र थ एकाध आपकी सूची से भी मिलगए हैं।'

डा० माताप्रसादजी की उक्त सूची 'हिन्दी पुस्तक साहित्य' नाम से अप्रेल १९४५ मे प्रकाशित हो गई, उसे देख कर हमारे संयोजक जी को प्रकाशित जन ग्र थो की एक वड़ी सूची तय्यार करने की विशेष प्रेरणा मिली। फलत. उन्होंने हिन्दी के अतिरिक्त सस्कृत, प्राकृत, और अपभ्रश भाषा के ग्र थों की भी एक सूची सकलित की और उसे आरा के जैन सिद्धान्तभास्कर (त्रैमासिक) मे छपाना चाहा, परन्तु वहाँ क्रमशः प्रकाशित करने की बात उठी, जो उचित नही जंची। तदन तर भारतीय ज्ञान पीठ के प्रधान विद्वान न्यायाचार्य प० महेन्द्र कुमार जी से इसके विषय मे पत्र व्यवहार हुआ और वह मार्च १९४६ मे उनके पास बनारस भेज दी गई। न्यायाचार्य जीने उसे देखकर ८ अप्रेल के पत्र मे लिखा कि "इस (सूची) में बहुत परिश्रम करनेकी आवश्यकता है तब कही यह छपने योग्य होगी। अभी हमारे यहां छपाई का सिलसिला भी ठीक नही हो सका है"। इस बीच मे सयोजकजीने बा० ज्योतिप्रसादजी

एम० ए० लखनऊमे भी पत्रव्यवहार किया, जिन्हें हाल मे पी एच० डी० की उपाधि भी प्राप्त हो गई है, और उन्हे सूचीके सम्पादन की प्रेरणा का, जिसके उत्तर में उन्होंने अपने ४ अप्रेल १९४६ के पत्र मे लिखा कि "हिन्दी सूची भी मैं सम्पादन करदूँगा आप मगालें।" इस स्वीकृति के अनुसार वह सूची उन्हे बनारस से भिजवादी गई और उन्हे ११ अप्रेल को मिल गई, जिसकी पहुंच के पत्र तथा बाद के भी कुछ पत्रों मे उन्होने सूची के सम्पादन की कुछ कठिनाइयो तया अपने इकले की असमर्थतादि का उल्लेख करते हुए मुझ से परामर्श करने तथा वीरसेवामन्दिर की मार्फत इस कार्य के सम्पन्न होने आदि का सुझाव रक्खा। फलत इस ग्रंथसूची पर उस वक्त तक कोई खास काम नही हो सका जब तक कि श्री ज्योतिप्रसादजी की नियुक्ति १ ली अक्तूबर १९४६ को वीरसेवामन्दिर मे नही हो गई।

मुझे उक्त सूची की स्थिति आदि का पहले से कोई विशेष परिचय नही था, और इस लिये यह समझ लिया गया था कि बा० ज्योतिप्रसाद जी, जिन्होंने सूचीका सम्पादन स्वीकार किया है, अपने अवकाशके समयो मे उस काम को भी करते रहगे, तदनुसार ही उन्हें उसकी याददिहानी करा दी गई; परन्तु वैसा कुछ नही हो सका। साथ ही, यह मालूम पडा कि सूची में कितना ही संशोधन, परिवर्तन और परिवर्द्धन किया जाने को है। अतः आफ़िस वर्क के रूप मे इस कार्य सम्पादन के लिए बाबू ज्योतिप्रसाद जी की ख़ास तौर से योजना की गई और कार्य की रूप-रेखा भी प्राय निर्धारित कर दी गई। उस वक्त तक वह सूची कोष्ठको के रूप मे थी, अकारादि क्रम से ग्रंथ उसमें जरूर दिये थे परन्तु वह क्रम बहुधा कोश-क्रम के अनुसार ठीक नहीं था—कितने ही ग्रन्थ आगे पीछे लिखे हुए थे, कुछ दोबारा तिबारा प्रविष्ट हो गये थे, बहुत से ग्रन्थ लिखने से छूट गये थे और कुछ ग्रंथों का परिचय भी कहीं कहीं त्रुटित तथा गलत हो रहा था। इन सब दोषोको दूर करते हुए प्रत्येक ग्रन्थके परिचयको जिनरत्नकोशादि की तरह धाराप्रवाह (running) रूप में एक साथ देने की व्यवस्था की गई और

यह भी निश्चय किया गया कि जैनियोकी साहित्य-सेवाको प्रदर्शित करने-वाली एक अच्छी प्रभावक भूमिका भी साथ में रहे, जिससे इस पुस्तक की उपयोगिता बढ़ जाय। तदनुसार ही वीरसेवामन्दिर में उक्त सूची पर नये-कार्डीकरणादि द्वारा सम्पादन-कार्य हुआ, जिसके फल स्वरूप उसे वर्त्तमान रूप प्राप्त हुआ है और उसमें सामयिक पत्रो तथा भाषणो के अतिरिक्त लगभग साढे छह सौ ग्रन्थो का नई वृद्धि हुई है—उर्दू, मराठी, गुजराती, बगला और अंग्रेजी की तो सभी पुस्तकें नई प्रविष्ठ की गई हैं।

बा० ज्योतिप्रसाद जी का कार्य-काल वीरसेवामन्दिर मे ३१ जुलाई १९४७ तक रहा। अपने इस दश महीने के कार्यकाल में उनका अधिकांश समय प्रस्तुत सूची के सम्पादन मे ही व्यतीत हुआ, जिसे ६-७ महीने का पूरा समय कहा जा सकता है। जुलाई के अन्त मे जैसे-तैसे भूमिका का कार्य पूरा होकर सूची का सम्पादन-कार्य समाप्त हुआ। अपने इस सम्पादन कार्य में, जिसमे वीरसेवामन्दिर के दूसरे विद्वानो प० परमानन्द जी शास्त्री तथा न्यायाचार्य पं० दरबारी लालजी का भी कुछ सहयोग प्राप्त होता रहा है, सम्पादक जी कहाँ तक सफल रहे उसे विज्ञपाठक स्वय समझ सकते हैं।

सूची का सम्पादन समाप्त होनेसे पहले ही सयोजक जी को उसके शीघ्र छपाने की चिन्ता थी, जिसके लिये उन्होंने अनेक पुस्तक प्रकाशको से पत्र व्यवहार किया—बडौदा के ओरियटल इन्स्टिट्यूट, इलाहाबाद लाजर्नल कम्पनी, डा० माताप्रसादजी गुप्त और इलाहाबाद के रायसाहब रामदयाल जी अग्रवाल तक को पुस्तक-प्रकाशन के लिये प्रेरणा की गई, परन्तु कही से भी सफलता प्राप्त नही हुई—सभी ने अपनी अपनी परिस्थितियो के वश छपाने मे असमर्थता व्यक्त की। उस समय कागज का भी बडा अकाल था, सारे देश मे उसका संकट व्याप्त था और कागज के सरकारी कोटे की भारी झझट थी, इसी से प० नाथूराम जी प्रेमी ने उन्हे बम्बई से लिखा था कि "प्रकाशित करने के लिए मे किसे बताऊँ। इस समय तो शायद ही कोई छापने को तय्यार हो।" वीरसेवामन्दिर को कागज का कोटा बहुत ही कम प्राप्त

था और कोटे से अधिक कागज दूसरे मार्ग से भी खरीद कर नहीं लगाया जा सकता था, यह बड़ी दिक्कत दरपेश थी और इसलिये मैंने संयोजकजी-को लिख दिया था कि 'ऐसी हालत में यदि आप किसी दूसरे प्रकाशक से इसे प्रकाशित करना चाहें तो उसमे अपने को कोई खास आपत्ति नहीं हो सकती।'

इस तरह प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशन जो उस समय रुका तो वह अनेक परिस्थितियो के वश अर्से तक रुका ही पड़ा रहा। वीरशासनसंघ कलकत्ता के मंत्री बा० छोटे लाल जी के पास भी यह दो एक वर्ष प्रकाशन की बाट जोहता हुआ पड़ा रहा। कलकत्ता से ग्रन्थ की प्रेस कापी वापिस आने पर संयोजक जी जैनमित्रमंडल दिल्ली के मंत्रियो बा० महतावसिंहजी बी० ए० और बा० आदीश्वरप्रसाद जी एम० ए० से इस ग्रंथ को मंडल से छपाने की अनुमति प्राप्त करने मे ही नही किन्तु उसे प्रेस को दे देने मे भी सफल हो गये, और इस तरह इस ग्रंथ के दुर्भाग्य का उदय समाप्त हुआ, यह बड़ी खुशी की बात है और इसके लिये जैन मित्र मंडल और उसके उक्त दोनों मंत्री विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। बा० पन्नालालजी का सम्बन्ध जैन मित्र मंडल से बहुत पुराना है, आप कई वर्ष तक उसके सहायक मंत्री रहे हैं और आप के उस मंत्रित्व-काल मे जैनमित्रमंडल चमक उठा था। ऐसी स्थिति में आपकी एक उपयोगी कृति चिरकाल तक यों ही पड़ी रहे यह उसे कहां तक सहन हो सकता था। आखिर काल-लब्धि आई और उसे ही इस पुस्तक को छपाने के लिए विवश होना पड़ा, जिसके छपाने मे वह भी पहले उपेक्षा-भाव दर्शा चुका था।

यह है इस पुस्तकके आयोजनादि-सम्बन्धी भी कुछ रोचक कथा।

मुझे इस पुस्तक के प्रेस में जाने का हाल उस समय मालूम पड़ा जब कि ५-७ फार्म ही छपने को बाकी रह गये थे। यदि प्रेसमे जानेसे पहले मुझसे इस विषय मे परामर्श कर लिया गया होता तो उसमे कितना ही सुधार हो जाता—कम से कम मुद्रणकला की जो खटकने वाली त्रुटियां पाई जाती हैं

वे तो न रहने पाती, और छपाने मे भी इतनी अशुद्धियाँ न रहती। अस्तु, जैसी कुछ भी है यह पुस्तक अब पाठको के सामने उपस्थित है और अपने उस उद्देश्य को पूरा करने मे बहुत कुछ समर्थ है जिसे लेकर यह प्रस्तुत की गई है। जिस पुस्तक के पीछे वीरसेवामन्दिर की भारी शक्ति लगी हो और कितना ही अर्थ-व्यय हुआ हो, उसे इतने वर्षों के बाद पाठको के हाथोमे जाता हुआ देखकर मेरी प्रसन्नताका होना स्वा- भाविक है।

अन्त मे यह जान कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल और डा० हीरालालजी जैसे प्रमुख विद्वानोने अपने अपने वक्तव्यो (प्राथमिक, प्राक्कथन) मे इस पुस्तक का अभिनन्दन किया है, और इसके लिए मैं दोनो ही विद्वानो का हृदय से आभारी हूँ।

आशा है समाज की सभी संस्थाएँ और साहित्य-प्रेमी सज्जन इससे इधर-उधर बिखरे हुए अपने अज्ञात साहित्यका एकत्र परिचय प्राप्त कर उससे यथेष्ट लाभ उठाने मे समर्थ हो सकेंगे।

वीर सेवा मन्दिर
२१ दरियागज, दिल्ली
ज्येष्ठ वदि ३, स० २०१५

जुगलकिशोर मुख्तार

जैनियों की साहित्य सेवा
और
प्रकाशित जैन साहित्य

किसी भी देश अथवा जाति के सांस्कृतिक विकास का मापदण्ड उसका साहित्य होता है। जातीय साहित्य की विपुलता, विविधता और उत्कृष्टता ही जातीय संस्कृति की उन्नतावस्था की द्योतक होती हैं। भारतीय संस्कृति की श्रमणधारा की प्रधान एवं सर्व प्राचीन प्रतिनिधि जैन संस्कृति विशुद्ध भारतीय होने के साथ ही साथ प्राय: सर्व देशव्यापी भी रही है। जैनधर्म का सम्बन्ध कभी भी देश के किसी एक ही भाग विशेष अथवा जाति या वर्ग विशेष से नही रहा वरन सदैव से ही न्यूनाधिक अंश मे यह धर्म सम्पूर्ण देशव्यापी रहता चला आया है और प्राय: प्रत्येक जाति तथा वर्ग के व्यक्ति इसके अनुयायी रहे है। एक प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ के कथनानुसार तो सम्पूर्ण भारतवर्ष मे शायद एक भी ऐसा स्थान नहीं मिल सकता जिसे केन्द्र बना कर यदि बारह मील व्यास का एक काल्पनिक वृत्त खींचा जाय तो उसके भीतर एक या अधिक जैन मन्दिर, तीर्थ, बस्ती या पुराना अवशेष न मिले।

वर्तमान मे जैन धर्मानुयायियो की संख्या यद्यपि अत्यल्प—लगभग २५-३० लाख रह गई है, तथापि आज भी वे देश मे सर्वत्र फैले हुए है और विभिन्न प्रान्तो, जातियो, वर्गो और श्रेणियो के व्यक्ति उनमें सम्मिलित है। साथ ही वर्तमान जैन समाज प्रधानतया वर्तमान भारतीय समाज के समुन्नत, सुशिक्षित एवं समृद्ध भाग का ही एक महत्त्वपूर्ण अंश है। यह धनीमान है और अपने लोकोपकारी कार्यों के लिए प्रसिद्ध है। उसके अगणित तीर्थ, देवालय,

शास्त्र भडार तथा अन्य साहित्यिक एव लोकोपकारी सस्थाए सुव्यवस्थित और सुचारू रूप से सचालित है। धर्म वैशिष्टय और सस्कृति वैशिष्टय के रहते हुए भी जैन समाज ने सदैव से अपने आपको अखिल भारतीय समाज एव भारतीय राष्ट्र का अविभाज्य अ ग समझा है और आज भी समझती है। जैन हिन्दू हैं या नही इस सम्बन्ध मे जो मतभेद है उनका कारण धर्म वैभिन्य ही है। धार्मिक एव तत्सबधित सास्कृतिक परम्परा की दृष्टि से जैन अवश्य ही हिन्दू नही हैं किन्तु राष्ट्रीयता एवं भारतीयता की दृष्टि से वे हिन्दू ही हैं इसमे कोई सदेह नही। उनका धर्म, सस्कृति और वे स्वय प्राचीन काल से भारत के ही मूलतः शुद्ध अधिवासी रहे हैं। वे यही जन्मे और फले फूले है। वे भारत के ही हैं और भारत उनका है।

जैन साहित्य—एक अत्यन्त प्राचीन काल से चली आई देश व्यापी संस्कृति के रूप मे जैन सस्कृति ने अखिल भारतीय सस्कृति की धर्म, दर्शन, साहित्य, कला, विज्ञान, राजनीति, समाज-व्यवस्था, रीति रिवाज एव आचार-विचार इत्यादि विविध शाखाओ को अनगिनत, अमूल्य एव स्थायी महत्व की देनें प्रदान की हैं। ज्ञान सवर्द्धन एव साहित्य निर्माण के क्षेत्र मे ही जैनो ने प्राचीन व अर्वाचीन विभिन्न भारतीय भाषाओ मे विविध विषयक विपुल साहित्य का सृजन करके, भारती के भडार को सुसमृद्ध एव समलकृत किया है। सस्कृत साहित्य को जैन विद्वानो की देनें साधारण नही है, किन्तु उन्होने प्राचीन काल से प्राकृत एव तत्पश्चात् अपभ्र श जैसी अपने-अपने समय की लोक भाषाओ को विशेषकर इसी कारण अपनाया और साहित्य का माध्यम बनाया जिससे कि सर्व साधारण उक्त रचनाओ का लाभ उठा सके। इसी उद्देश्य को लक्ष्य बनाते हुए उन्होंने विभिन्न प्रान्तीय, देसी भाषाओ मे ग्र थ रचनाए करके उक्त भाषाओ के विकास मे अत्यधिक महत्वपूर्ण योग दान दिया। तामिल भाषा के प्राचीन 'संगम' साहित्य का पर्याप्त एव श्रेष्ठतर भाग जैन विद्वानो की ही कृति है, और कनाडी भाषा का तो तीन चौथाई से अधिक साहित्य जैनो द्वारा ही निर्मित हुआ है। गुजराती एव राजस्थानी भाषाओ के साहित्य की जैनो द्वारा

महती अभिवृद्धि हुई और तैलगु, मलयालम्, मराठी, उडिया, बगाली, बिहारी गुरुमुखी आदि प्राय प्रत्येक प्रान्तीय भाषा मे अल्पाधिक जन साहित्य उपलब्ध है। आधुनिक देसी भाषाओ की जननी अपभ्र श पर तो जैनो का प्राय स्वाधिकार सा रहा ही था, हिन्दी की भी प्राचीनतम ज्ञात एव उपलब्ध रचनाए जैनो की ही प्रतीत होती है। पुरातन हिन्दी के गद्य-पद्य साहित्य का एक बडा अ श जैन प्रणीत है, और वह कोई साधारण अथवा उपेक्षणीय कोटि का भी नही है। व्यापार की प्रधान सकेत लिपि 'मु'डिया' मे एकमात्र साहित्यिक रचना अभी जैनो की ही उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त उर्दू, फारसी, अ गरेजी, जर्मन, फ्रेन्च, इटालियन आदि भाषाओ मे भी जैन साहित्य विद्यमान है।

जहा तक लेखन शैली का प्रश्न है, जैन साहित्यकारो ने विभिन्न भाषाओ की गद्य पद्यमयी अनेक नवीन शैलियो का आविष्कार किया और प्राय सर्व ही प्रचलित शैलियो को अपनाया एव विकसित किया। मुक्तक एव स्फुट काव्य, खण्ड काव्य, महा काव्य, नाटक, चम्पू, आख्यान उपाख्यान, चारित्र पुराण, ऐतिहासिक, कल्पित, घटनात्मक, नीत्यात्मक, वर्णनात्मक अथवा भावात्मक, सूत्र, वृत्ति, वार्तिक, निर्यु क्ति, चूर्णि, टीका टिप्पणि, भाष्य व्याख्या, वैज्ञानिक विवेचन, से युक्त निबध प्रबध, रासा विलास, ढमाल चौपई, स्तुति स्तोत्र, पद भजन प्राय सर्व ही प्राचीन अर्वाचीन शैलियो मे रचनाए की तथा विभिन्न प्रचलित एव नवीन छन्दो, रस अलकार आदि का सफल प्रयोग किया। आधुनिक जैन साहित्यकार भी वर्तमान मे प्रचलित सभी शैलियो का सफल प्रयोग कर रहे है। यद्यपि जैन साहित्य की सृष्टि मे प्रधानतया धार्मिक प्रवृत्ति ही कार्य करती रही है तथापि उनके सृजको ने उसे लोकरजक एव लोकोपयोगी बनाने का भी यथाशक्य प्रयत्न किया और वे उसमे सफल भी हुए। भाषा एव शैली के सुचारु एव उपयुक्त चुनाव के द्वारा उन्होने अत्यन्त शुष्क एव नीरस विषयो और प्रसगो को भी रुचिकर, पठनीय, सुबोध एव सर्व ग्राह्य बनाने का प्रयत्न किया।

जैन श्रमण सस्कृति निवृत्ति प्रधान है, अतएव स्वभावत उसके साधको एव उपासको द्वारा निर्मित साहित्य सामान्यत वैराग्यमयी, चारित्र प्रवण और

शान्त रस प्रधान रहा, तथापि प्राय प्रत्येक लोकोपयोगी एव समयापयुक्त विषय पर इन विद्वानो ने अपनी प्रमाणीक लेखनी का चमत्कार दिखलाया। धर्मशास्त्र, तत्व ज्ञान, आचार शास्त्र, पुराण चारित्र, पूजा प्रतिष्ठा पाठ, स्तुति स्तोत्र आदि विविध धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त काव्य, नाटक, चम्पू, कथा साहित्य, जीवन चरित्र, आत्म चरित्र, इतिहास, राजनीति, नीत्योपदेश, समाज शास्त्र, दर्शन, अध्यात्म, न्याय, तर्क, छन्द, व्याकरण, अलकार, काव्य शास्त्र, कोष, भाषाविज्ञान, मन्त्र शास्त्र, ज्योतिष, सामुद्रिक, वैद्यक, पशु चिकित्सा, स्थापत्य मूर्तकला एव वास्तु विज्ञान, गणित, सामान्य विज्ञान, रसायन, भौतिक, जन्तु विज्ञान, भूगोल, खगोल, रत्न परीक्षा, भ्रमण वृत्तान्त, स्थान परिचय, इत्यादि प्राय सब ही विषयो पर ग्रन्थ रचना की। इन बातो का विस्तृत परिचयात्मक विवेचन साहित्यिक इतिहास का विषय है। तथापि जैन साहित्य की विपुलता, विविधता और महत्व का वहुत कुछ अनुमान केन्द्रिय, प्रान्तीय तथा रियासती सरकारो द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित ग्रन्थो की खोज सम्बधी विभिन्न विवरण पत्रिकाओ, म्यूजियम रिपोर्टों, पुरातन पुस्तक भडारो तथा सार्वजनिक एव व्यक्तिगत सग्रहालयो के सूची पत्रो, विभिन्न स्थानीय दिगम्बर श्वेताम्बर जैन ग्र थ भण्डारो की उपलब्ध सूचियो तथा जैन पत्र पत्रिकाओ मे प्रकाशित तत्मम्वधी फुटकर लेखादिको से हो जाता है। इस प्रकार ऐसे बीसियो सहस्त्र जैन ग्रन्थो का पता चलता है जो उपलब्ध हैं। जिसपर अनेक प्राचीन जैन ग्रन्थ भडार, विशेषकर दिगम्बर सम्प्रदाय के, अभी तक बन्द ही पडे हुए है। उनमे कितने, कैसे और क्या-क्या साहित्य रत्न छिपे पडे हैं यह कहा भी नही जा सकता। जो भडार खुल गये है उनमे से भी कितनो की ही कोई व्यवस्थित सूची निर्मित एव प्रकाशित नही हो पाई हैं। वैसे तो प्राय प्रत्येक नगर, कस्वे और ग्राम मे जहा जैनियो की थोडी वहुत भी आवादी है तथा देश भर मे यत्र तत्र फैले हुए वहुसख्यक जैन तीर्थो मे से प्रत्येक पर एक वा अधिक जिन मन्दिर प्राय अवश्य ही विद्यमान हैं और प्राय प्रत्येक जिनालय अथवा उपाश्रय आदि मे छोटा वडा एक शास्त्र भडार भी अवश्य ही होता है जिसमे कि ताडपत्रीय, भोजपत्रीय अथवा कागज आदि अल्पाधिक प्राचीन हस्तलिखित ग्रथो का ही सग्रह प्रायः

रहता है। कितने ही जैन कुटुम्ब भी ऐसे हैं जिनके पूर्वजो मे साहित्यिक अभिरुचि रखने वाले विद्वान होते रहे है और उक्त विद्वानो द्वारा सग्रहीत लिखित अथवा रचित कितने ही ग्रथ बपौती के रूप मे चले आये उनके वशजो के पास आज भी सुरक्षित है, और जिनका सदुपयोग वे लोग चाहे भले ही न कर सके, किन्तु किसी ग्रन्थ को देना क्या कभी भी दिखाने मे भी सकोच करते है। इस प्रकार के असख्य फुटकर जैन शास्त्र भडारो का कोई व्यवस्थित या अव्यवस्थित भी अन्वेषण अभी तक हुआ ही नही और उनमे एक अकस्मात् दर्शक को बहुधा कितनी ही महत्वपूर्ण एव अलभ्य साहित्यिक सामग्री का दर्शन हो जाता है। अभी हाल मे ही काशी नागरी प्रचारणी सभा के अन्वेषक श्री दौलतराम जुआल के प्रसग से लखनऊ के केवल एक ही दिगम्बर जैन मन्दिर के शास्त्र भडार के कुछ मात्र हिन्दी हस्तलिखित ग्रथो का निरीक्षण करने का सुयोग मिला था। परिणाम स्वरूप कई एक अधुना अज्ञात हिन्दी के प्राचीन जैन साहित्यकारो और उनकी कृतियो का पता चला तथा कई एक अन्य ज्ञात प्राचीन साहित्यिको के ऐतिह्य पर महत्त्वपूर्ण नवीन प्रकाश पड़ा।

ग्रन्थ सूची—जैन ग्रथो की 'बृहत्टिप्पणिका' नामक एक प्राचीन ग्रथसूची पहिले से ही विद्यमान थी और आधुनिक युग मे भी कई स्वतन्त्र ग्रथसूचियें प्रकाशित हो चुकी है। जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेन्स ने 'जैन ग्रथ नामावली' नामक एक सूची प्रकाशित की थी और पाटन, जैसलमेर, सूरत, अहमदाबाद, लीबडी आदि स्थानो के श्वेताम्बर ग्रथ भडारो की व्यवस्थित सूचिये प्रकाशित हो चुकी है। दिगम्बर सूचियो मे सर्व प्रथम ग्रथ सूची जयपुर निवासी बाबा दुलीचन्द श्रावक के अपने मन्दिर मे स्थित शास्त्र भंडार की थी। जिसे उन्होंने 'जैन शास्त्र माला' के नाम से सन् १८९५ ई० में प्रकाशित किया था। सन् १९०१ मे लाहौर निवासी बा० ज्ञान चन्द्र जैनी ने 'दिगम्बर जैन भाषा ग्रथ नामावली' नाम से एक अन्य सूची प्रकाशित की। सन् १९०५ मे फ्रान्सीसी विद्वान डाक्टर ए० गिरनोट ने अपनी 'जैना बिबलियोग्रेफिका' (फ्रान्सीसी भाषा मे लिखित) मे ज्ञात बहुसख्यक जैन ग्रथो की सूची दी। एतत्क

पन्नालाल दिगम्बर जैन सरस्वती भवन, वम्बई, की सन् १६२३ से १६३२ तक प्रकाशित ६ वार्षिक रिपोर्टो मे उक्त भडार मे सगृहीत हस्तलिखित ग्रथो की परिचयात्मक सूचिये प्रकाशित हुई। इसी भवन की झालरापाटन स्थित शाखा की ग्रथ सूची भी 'ग्रथ नामावली' के नाम से प्रकाशित हो चुकी है। वीर सेवा मन्दिर, सरसावा से प्रकाशित मासिक अनेकान्त की विभिन्न किरणों मे दिल्ली के कई वडे वडे ग्रथ भडारो की सूचिये तथा सोनीपत, इन्दौर, नागौर आदि के भी कुछ भडारो की सूचिये मे प्रकाशित हो चुकी है। उपरोक्त वीर सेवा मन्दिर मे कई एक दिगम्बर ग्रथ भडारो के लगभग ६००० अप्रकाशित तथा अन्य सूचीयो मे न दिये हुए हस्तलिखित ग्रथो की प्रमाणिक परिचयात्मक सूची के प्रकाशन की योजना चल रही है। अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी तीर्थक्षेत्र कमेटी, जयपुर ने आमेर (जयपुर) के प्रसिद्ध प्राचीन भडार की तथा स्वय महावीर जी क्षेत्र (चाँदन गाँव, जयपुर) के भडार की सयुक्त ग्रथ सूची पुस्तकाकार प्रकाशित की है। इतना ही नही किन्तु महावीर जी तीर्थ क्षेत्र कमेटी की ओर सें श्री प० कस्तूर चद काशलीवाल एम० ए० ने जयपुर के शास्त्रभडारो से दो ग्रन्थ सूचियें तैयार की और एक जैन ग्रन्थ प्रशास्ति संग्रह तैयार किया जो उस क्षेत्र कमेटी के द्वारा प्रकाशित हो चुके है। आगे और भी ग्रथ भडारो की सूचियो के निर्माण का कार्य चालू हो रहा है। इसके सिवा धर्मपुरा, दिल्ली, नये मन्दिर के सचालको की ओर से प परमानन्द शास्त्री उक्त मन्दिर के शास्त्र भडार की सूची वना रहे है जो प्राय तय्यारी के लगभग है, उसका प्रकाशन भी जल्दी ही होगा। दक्षिण कर्णाटकस्थ मूडवद्री आदि के वृहत् जैन भडारो मे सग्रहीत कन्नडी ग्रथो की श्री प० के० भुजवलि शास्त्री द्वारा सुसम्पादित एक वृहत्सूची भारतीय ज्ञान पीठ, काशी से प्रकाशित हुई है। यत्र तत्र अन्य भडारो की सूचियें प्रकाशित करने की ओर भी लोगो का ध्यान आकर्षित हो रहा है। किन्तु इस दिशा मे अव तक का सर्वाधिक महत्व-पूर्ण एव प्रमाणीक प्रयत्न विल्सन कालिज, वम्वई के विद्वान प्रोफेसर डा० हरि दामोदर वेलङ्कर द्वारा सम्पादित "जिनरत्न कोष" है। इस ग्रथ का प्रका-

शन सन् १९५४ ई० मे भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना द्वारा 'गवर्नमेंट ओरियंटल सीरीज, क्लास 'सी' नं० ४ के रूप मे हुआ है। इस ग्रंथ मे जो कि लीपजिग (जर्मनी) से प्रकाशित टी० आफ्रेक्ट के सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'कैटेलोगस कैटेलोगोरम' की शैली पर निर्मित हुआ है, विद्वान सम्पादक ने १२१ विभिन्न रिपोर्टों, ग्रंथ सूचियों, सूचीपत्रो आदि के आधार पर लगभग दस हजार जैन ग्रंथो का तथा उनकी विभिन्न ज्ञात प्रतियो का संक्षिप्त परिचय अकारादि क्रम से दिया है। इस कोष मे दिगम्बर, श्वेताम्बर व उभय सम्प्रदायो के ग्रंथो को समान रूप से समाविष्ट किया गया है। किन्तु जैसा कि विद्वान सम्पादक ने ग्रंथ के प्राक्कथन मे स्वयं स्वीकार किया है, वे दिगम्बर साधन सामग्री का अत्यल्प उपयोग ही कर पाये। इसी कारण से उक्त कोष मे समाविष्ट दिगम्बर ग्रंथ संख्या मे भी कम है, उनकी विवेचित प्रतियें भी न्यूनतर हैं और उनका परिचय अपेक्षाकृत अधिक न्यूनतर होने के साथ ही साथ कहीं कहीं त्रुटित एवं दोषपूर्ण भी है।

प्रशस्ति आदि—उपरोक्त ग्रन्थ सूचियो के अतिरिक्त, जैन ग्रन्थो के आदि अथवा अन्त मे पाई जानेवाली उनके रचयिताओं, टीकाकारो, प्रतिलेखको, दातारो आदि की प्रशस्तियो के भी कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, यथा मुनि श्री जिनविजय द्वारा सम्पादित 'जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह,' जैन सिद्धान्त भवन आरा से प्रकाशित 'प्रशस्ति संग्रह,' तथा वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली द्वारा निर्मित दो जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह जिनमे से एक मे संस्कृत प्राकृत ग्रन्थों की प्रशस्तियें संकलित हैं और दूसरे मे अपभ्रंश ग्रन्थो की। श्री महावीर जी तीर्थ क्षेत्र कमेटी (जयपुर) भी आमेर भंडार के ग्रन्थो मे प्राप्त प्रशस्तियो का एक संग्रह प्रकाशित करा रही है। किन्तु अभी तक हिन्दी जैन ग्रन्थो की प्रशस्तियों का संकलन करने की ओर किसी का ध्यान नहीं गया है। मेरे स्वयं के अवलोकन मे अबतक लगभग ५०-६० ऐसी प्रशस्तियें आ चुकी हैं जिनके प्रकाशन से न केवल हिन्दी जैन साहित्य के इतिहास पर ही वरन मध्य कालीन भारत के राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास पर भी अच्छा प्रकाश पड़ने की

पर्याप्त सभावना है। अपने ऐतिहासिक महत्त्व के अतिरिक्त ये ग्रन्थ प्रशस्तियें तत्तद ग्रन्थो, उनके कर्त्ताओ, उक्त ग्रन्थो की प्रतियो आदि से सम्वन्धित जानकारी के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होती हैं।

साहित्यिक इतिहास—जैन साहित्य की अतीत कालीन प्रगति और इतिहास पर अभी तक कोई भी एक पूर्ण एव प्रमाणिक ग्रन्थ निर्मित नही हुआ है। भारतीय साहित्य के सामान्य इतिहास मे, हिन्दी सस्कृत आदि भाषाओ के साहित्य से सम्वधित अथवा दर्शन, कला, विज्ञान आदि विविध विषयक साहित्य के इतिहास ग्रन्थो मे, किसी भी कारण से क्यो न हो, प्राय जैन साहित्य की उपेक्षा ही की जाती रही है। प्रथम तो इन पुस्तको में जैन साहित्य का कोई उल्लेख ही नही रहता, और यदि किसी किसी मे रहता भी है तो अत्यल्प, संक्षिप्त, गौण और वहुधा त्रुटिपूर्ण भी। उसे कोई महत्त्व भी नही दिया जाता और न साहित्यक विकास मे उसके उपयुक्त स्थान पर कोई प्रकाश डाला जाता है। किन्तु विभिन्न भापाओ मे रचित जैन साहित्य के इतिहास पर जो कुछ थोडा वहुत साहित्य अव तक प्रकाशित हो चुका है वही पढकर उसके वास्तविक महत्त्व तथा भारतीय साहित्य मे उसके सम्माननीय स्थान का वहुत कुछ अनुमान हो जाता है। जैन साहित्य के इतिहास विषय पर निम्नलिखित पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है—प० नाथूराम प्रेमीकृत 'दिगम्वर जैन ग्रन्थ कर्त्ता और उनके ग्रन्थ,' 'हिन्दी जैन साहित्य का सक्षिप्त इतिहास,' 'कर्णाटक जैन कवि,' 'जैन साहित्य और इतिहास'। श्रीयुत आर-नरसिहाचार्य कृत 'कर्नाटक कवि चरितें' श्री मोहनलाल देसाई कृत 'गुर्जर कवि'-२ भाग, प्रो० ए० सी० चक्रवर्ती कृत 'जैन लिटरेचर इन तामिल'। श्री मूलचन्द वत्सल कृत जैन कवियो का इतिहास,' वावू कामताप्रसाद कृत 'हिन्दी जैन साहित्य का सक्षिप्त इतिहास। राजस्थानी भापा के जैन साहित्य पर श्री अगरचन्द नाहटा ने अच्छा कार्य किया है। हिन्दी के पुरातन जैन गद्य साहित्य पर हम स्वय एक पुस्तक लिख रहे हैं। इन पुस्तको के अतिरिक्त सुयोग विद्वानो द्वारा सम्पादित प्राचीन ग्रन्थो के आधुनिक सस्करणो की विद्वत्ता पूर्ण

विस्तृत प्रस्तावनाओ मे, गत वर्षो मे प्रकाशित विभिन्न जैन अभिनन्दन ग्रन्थो मे, जैन हितैषी, जैन साहित्य सशोधक, जैन विद्या आदि भूत कालीन सामायिक पत्रो की फाइलो मे तथा जैन सिद्धान्त भास्कर, अनेकान्त, जैन सत्यप्रकाश, वीरवाणी आदि वर्तमान पत्र पत्रिकाओ मे फुटकर लेखो के रूप मे जैन साहित्य और उसके इतिहास से सम्बन्धित विपुल सामग्री बिखरी पडी है। अग्रेजी प्रभृति विदेशी भाषाओ मे जैन सम्बधी साहित्य के स्वरूप एव प्रगति का ज्ञान डा० ए० गिरनोट (Dr A Guirnot) कृत 'जैना विवलियोग्रेफिका,' रा० बाबू पारसदास द्वारा सम्पादित 'जैन विवलियोग्रेफी,' न० १ तथा बाबू छोटेलाल जी कृत 'जैन बिबलियोग्रेफी' से हो सकता है। किन्तु इन पुस्तको मे सन् १९२५ के उपरान्त का विवरण नही है। जैन कथा साहित्य पर डा० जे० हर्टल का कार्य श्लाघनीय है।

साहित्य के इतिहास और प्राचीन ग्रन्थो तथा ग्रन्थ प्रतियो के परिचय से जहाँ वर्तमान युग की बहुलता बढती है तथा विद्वानो एव अन्वेषकों को अपने कार्य मे भारी सहायता मिलती है वहाँ उनके कारण वर्तमान प्रकाशन प्रगति को भी भारी प्रोत्साहन मिलता है। साहित्यिक क्षेत्र को समुन्नत एव प्रगतिशील बनाने के लिए युगानुसारी मौलिक ग्रन्थ रचना और उनका प्रकाशन तो आवश्यक है ही, प्राचीन अप्रकाशित ग्रन्थ रत्नो के आवश्यक अनुवादादि सहित सुसम्पादित सस्करणो का प्रकाशन भी अतीव आवश्यक एव वाञ्छनीय है। जो साहित्य शताब्दियो और सहस्राब्दियों से कराल काल को चुनौती देता हुआ अपने लोक हितकारी अथवा लोकरजक रूप और स्थायी महत्त्व के कारण सदा हरा रहता चला आया है, अपनी इस अत्यन्त मूल्यवान वपौती का सरक्षण, प्रचार, प्रसार एव सदुपयोग करना वर्तमान सन्तति का प्रधान कर्तव्य है। इस प्रकार न केवल सतत सरस्वती की धारा अनवरोध रूप से प्रवाहित होती रहेगी वरन उसके पुनीत जल मे निमज्जन करते रहने से मानव समाज सदैव अपना कल्याण करता रहेगा, उसे नव स्फूर्ति प्राप्त होती रहेगी और उसे अपना जीवन पथ-प्रशस्त करने मे सहायता मिलेगी।

मुद्रण कला का प्रभाव–अस्तु छापेखाने के प्रचार के पश्चात् भारतवर्ष मे जब से साहित्य का मुद्रण प्रकाशन प्रारम्भ हुआ है, विशेषकर जैन समाज मे तब ही से प्राचीन ग्रन्थो के प्रकाशन का ही बाहुल्य रहा है। उत्तरोत्तर उत्कृष्टत्तर यान्त्रिक अविष्कारो को प्रसूत करने वाले इस यन्त्र प्रधान युग मे साहित्य का मुद्रण एव प्रकाशन भी अधिकाधिक शीघ्रता एव विपुलता के साथ वृद्धि को प्राप्त होता रहा है। विविध प्रकार के बहुसख्यक शिक्षालयो की स्थापना के साथ साथ मुद्रित ग्रथों के अल्प मूल्य मे सहज सुलभ होने के कारण साक्षरता, शिक्षा, बहुविज्ञता एवं पठनाभिरुचि अधिकाधिक व्यापक होती जा रही हैं। विभिन्न प्रकार के असख्य पुस्तकालयो तथा अनगिनत सामयिक पत्र प्रत्रिकाओ के द्वारा उन्हे भारी प्रोत्साहन मिल रहा है। आज यह समस्या नही है कि 'पुस्तके तो हैं ही नही, पढे क्या और कैसे ? आज तो वास्तविक कठिनाई यह है कि पुस्तकें तो प्रत्येक स्थान मे सहज सुलभ हैं, और बहुसख्या मे, उन सब ही को पढ लेना असभव सा है, और आवश्यक अथवा उपयोगी भी नही है। तब अपने लिए उनका किस प्रकार चुनाव करें, उनमे से कौन-कौन सी को पढें और किस-किस को न पढें ? मनुष्यो के बढते हुए ज्ञान, शिक्षा एव साहित्यिक सस्थाओ की सख्या वृद्धि शिक्षा प्रणाली के द्रुत विकास तथा मानव जीवन की अत्यन्त वेग के साथ वृद्धि, को प्राप्त होती हुई आवश्यकताओ और विषमताओ के कारण साहित्यगत विषय भी सख्यातीत होते जा रहे हैं। अपनी-अपनी रुचि, आवश्यकता एव साधनो के अनुसार पृथक-पृथक विषय मे विशेषज्ञता प्राप्त करना आवश्यक होता चला जा रहा है।

पुस्तक सूची की आवश्यकता–इन सब कारणो से आज मुद्रित प्रकाशित पुस्तको की परिचयात्मक सूचियो की आवश्यकता एव उपयोगिता बहुत अधिक हो गई है। प्रगतिशील पाश्चात्य भाषाओ के साहित्य के सबध मे ऐसी अनेक सूचियें विद्यमान हैं और निर्मित होती रहती है। दूसरे उनके प्रकाशको के सूची पत्र भी इतने सारपूर्ण और प्रमाणीक होते हैं–विषय विशेष सम्बन्धी

साहित्य के प्रकाशक भी बहुधा प्रथक-प्रथक हैं—कि उक्त व्यवसायिक सूचीपत्रो से ही तत्सम्बन्धी आवश्यकता की अधिकांश पूर्ति हो जाती है। किन्तु भारतवर्ष के और विशेषकर हिन्दी के प्रकाशकों की अवस्था इससे नितान्त भिन्न है। यहाँ विशेषज्ञता को कोई महत्त्व नही दिया जाता, प्रकाशक अनगिनत हैं किन्तु उनमे सुव्यवस्था और सगठन का सर्वथा अभाव है। उनके सूचीपत्र मात्र व्यवसायिक दृष्टि से प्रेरित सस्ती विज्ञापन बाजी के नमूने भर होते है अत. पर्याप्त दोष पूर्ण भी होते है। उनसे पुस्तक विशेष का वास्तविक, ठीक-ठीक तथा पूर्ण परिचय प्राप्त नही होता। ऐसे सब ही प्रकाशित सूचीपत्रों का प्राप्त करना भी दुष्कर है, हिन्दी की सभी प्रकाशित पुस्तको की यथार्थ जानकारी भी उनसे नहीं हो सकती। अतएव हिन्दी की पुस्तको की एक ऐसी सार्वजनिक सूची की आवश्यकता थी जिसमे हिन्दी ग्रन्थ प्रकाशन के स्वरूप, प्रगति, इतिहास, त्रुटियो और आवश्यकताओ का ज्ञान हो सके। इस अभाव की पूर्ति अनेक अंशो मे प्रयाग विश्व विद्यालय के प्रोफेसर डा० माता प्रसाद जी गुप्त द्वारा सम्पादित तथा हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग द्वारा हाल मे ही प्रकाशित 'हिन्दी पुस्तक साहित्य' नामक ग्रन्थ से हो जाती है। इस पुस्तक में विद्वान सम्पादक ने एक विस्तृत महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना के अतिरिक्त लगभग ५,५०० मुद्रित प्रकाशित हिन्दी पुस्तको की सक्षिप्त परिचयात्मक अनुक्रमणिका दी है, जिनमे प्राचीन अर्वाचीन, मौलिक एव टीका अनुवादादि, धार्मिक, सम्प्रदायिक (अधिकांशत. वैदिक परम्परा के ही हिन्दू समाजगत विभिन्न सम्प्रदायो से सम्बन्धित), लौकिक विविध विषयक, छोटी-बड़ी, महत्त्वपूर्ण तथा अति सामान्य कोटि की साधारण-प्राय सर्व ही हिन्दी सस्कृत पुस्तकें सम्मिलित है। स्कूली पाठ्यक्रम की साधारण पुस्तकें, पारसी थ्येटर कम्पनियों मे खेले जाने वाले सस्ते नाटक, सिनेमा के गायन आदि की पुस्तकें, पुराने ढग के साग, ख्याल, नौटकी, आल्हा आदि की पुस्तकें तथा फुटकार या अज्ञात ट्रैक्ट आदि छोड दिये गये हैं। साथ में गुण-विभाजनगत विषयानुसार पुस्तकानुक्रमणिका तथा लेखकानुक्रमणिका से पुस्तक की उपयोगिता और अधिक बढ़ गई है।

किन्तु एक सहृदय साहित्यिक विज्ञान के द्वारा रचित साहित्यिक विज्ञान सबधी ऐसी निर्देशात्मक पुस्तक के अवलोकन से जिस बात पर साश्चर्य खेद हुआ वह यह है कि इस पुस्तक मे भी जैन साहित्य की उपेक्षा ही की गई है और उसके प्रति अन्याय भी हुआ है। पुस्तक मे निर्देशित लगभग ४,५०० लेखको मे से केवल ५० लेखक जैन हैं जिनमे २० ऐसे हैं जिन्होंने जैन सबधी कुछ नही लिखा, और यदि उनमे से किसी की कोई जैन रचना है भी तो उनका उल्लेख नही किया गया, शेष ३० लेखको मे दो हजार वर्ष प्राचीन आचार्य कुन्दकुन्द से लेकर आधुनिक काल के अति गौण लेखक तक सम्मिलित हैं। कुल ७०-७५ जैन पुस्तको का उल्लेख है जिनमे सस्कृत, प्राकृत, अपभ्र श एव हिन्दी के मौलिक तथा टीका अनुवादादिक और कथा कहानी, पूजा पाठ, पद भजन, अध्यात्म, तत्वज्ञान, निमित्त शास्त्र आदि कितने ही विषयो के दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानक वासी सभी सम्प्रदायो के एक-एक दो-दो ग्रन्थ बानगी के लिए दे दिये गये हैं। इन गिने चुने लेखको और उनकी कृतियो के परिचय भी बहुधा दोष पूर्ण एव भ्रामक है, उदाहरणार्थ, कुन्दकुन्दाचार्य कृत 'समयसार' को नाटक लिखना, 'बारह मासा नेमिनाथ' पुस्तक को केवल बारह मासा लिखकर उसके लेखक के रूप मे नेमिनाथ को लिखना, 'जैन रामायण' के कर्त्ता का नाम रामचन्द्र के स्थान पर हेमचन्द्र लिखना, कवि वृन्दावन दास कृत 'अर्हत पाशा केवलि' नामक शकुन शास्त्र को प्राचीन युग का एक जीवन चरित्र(!) लिखना। 'जाति की फेहरिस्त' और 'अग्रवालो की उत्पत्ति' जैसी पुस्तको को 'धर्म-तत्कालीन' विषय के अन्तर्गत तथा 'जैन स्तवनावली' और 'जैनग्रन्थ सग्रह' जैसे प्रकीर्णकस्फुट पाठ सग्रहो को 'साहित्य का इतिहास-तत्कालीन' विषयके अन्तर्गत देना, इत्यादि। और यह तब जबकि सम्पादक महोदय को जैन साहित्य की पूर्वोल्लिखित इतिहास पुस्तकें और ग्रन्थ सूचियें आदि तथा कम से कम प० नाथूराम प्रेमी के जैन ग्रन्थ कार्यालय के वृहत्सूचीपत्र के अतिरिक्त, जोकि सब सहज सुलभ थे, किसी भी अच्छी जैन साहित्यिक सस्था अथवा प्रकाशन सस्था या एक वा अधिक जैन साहित्यिको से ही पत्र व्यवहार द्वारा प्रकाशित जैन

साहित्य के सम्बन्ध मे बहुत कुछ जानकारी सरलता से प्राप्त हो सकती थी। स्वय लाला पन्नालाल जी अग्रवाल देहली निवासी ने जो कि ऐसे कार्यो मे सदैव अत्यधिक उत्साह रखते हैं और अपना पूर्ण सहयोग देने मे तत्पर रहते है, डा० माता प्रसाद जी की इस पुस्तक के लिए लगभग चार सौ मुद्रित जैन पुस्तको की एक परिचयात्मक सूची तैयार करके उनके पास भेजी थी। किन्तु सभवतया कुछ विलम्ब से प्राप्त होने के कारण, या क्या, डाक्टर साहब ने पन्नालाल जी की सूची का भी उपयोग नही किया। डाक्टर गुप्त की इस जैन साहित्य सबधी उदासीनता का जो कि भारत के बहुभाग अजैन विद्वानो और साहित्यिको मे आज इस बीसवी शताब्दी के मध्य मे भी पाई जाती है बहुत कुछ अनुमान प्रस्तुत पुस्तक के अवलोकन से तथा गुप्त जी की पुस्तक के साथ उसका तुलनात्मक अध्ययन करने से हो जायगा। इसमे सदेह नही है कि किसी जैन पुस्तक का मात्र मुखपृष्ठ देखकर अथवा किसी सूचीपत्र मे उसका नाम मात्र पढकर जैन साहित्य से अनभिज्ञ एक अजैन विद्वान के लिए उसका यथोचित परिचय देना बहुधा दुष्कर है। स्वय काशी नागरी प्रचारिणी सभा की हस्तलिखित ग्रन्थो की खोज सम्बधी विवरण पत्रिका मे जैन साहित्य विषयक अनेक उल्लेख सदोष एव भ्रान्तिपूर्ण हैं, जिनका एक लेख के रूप मे सशोधन करके मैंने अभी हाल में ही सभा के अन्वेषक श्री दौलतराम जुयाल द्वारा प्रकाशनार्थ सभा को, प्रेषित किया है। किन्तु ये कठिनाइयाँ जैन विद्वानो के सहज सुलभ सहयोग से सरलता से दूर की जा सकती हैं। गत वर्ष मे सभा के अन्वेषक महोदय ने लखनऊ के जैन शास्त्र भडारो मे सग्रहीत लगभग एक सौ हिन्दी ग्रन्थो के विवरण लिये, इस कार्य मे उन्हे मेरा पूर्ण सहयोग प्राप्त था, अपने लिये हुए विवरणो को वे मुझ से पूर्ण तथा सशोधित करवाकर ही भेजते थे, अतएव उक्त विवरणो मे कोई भारी या खटकने वाली भूलें रह जाने की तनिक भी सभावना नही है।

जैन प्रकाशनो की दशा—हिन्दी प्रकाशन कार्य की जिस कुव्यवस्था का उल्लेख ऊपर किया गया है, किन्तु पुस्तक प्रकाशन की दशा उससे भी बुरी है।

सामान्य भारतीय तथा हिन्दी पुस्तक प्रकाशन के प्राय सर्व दोष तो इसमे बढे चढे रूप मे पाये ही जाते, उनके अतिरिक्त कई एक अन्य त्रुटियाँ भी हैं। जैन पुस्तक प्रकाशन अभी तक एक लाभदायक व्यवसाय नही बन पाया है। उसके यथोचित सुविकसित एव सुव्यवस्थित होने मे अनेक बाधक कारण रहे है। जैन सस्कृति जैसी सर्वांगीण है, उसके दर्शन, साहित्य, कला और विज्ञान जैसे सुविकसित, उत्कृष्ट और व्यापक हैं, उनके विशेपाध्ययन, शोध खोज एव अनुसधान के लिए एक केन्द्रीय जैन विश्व विद्यालय का होना अत्यन्त आवश्यक था। ऐसे एक विश्व विद्यालय की स्थापना के लिए कई बार कुछ आन्दोलन भी चले, लगभग २५-३० वर्ष पूर्व वर्णीत्रय-पूज्य प० गणेश प्रसाद जी वर्णी, स्व० बाबा भागीरथ जी वर्णी तथा स्व० प० दीपचद्र जी वर्णी ने जैन विश्वविद्यालय की स्थापना का बीडा उठाया था, किन्तु समाज से उपयुक्त सहायता सहयोग न मिलने के कारण असफल रहे। भारतवष के विद्यमान विश्व-विद्यालयो मे भी जैनाध्ययन की कोई साधन सुविधाए नही हैं। बनारस के जैन कलचरल रिसर्च इन्स्टीटयूट द्वारा श्वेताम्बर बन्धु गत दो तीन वर्षों से इनमे से कुछ विश्व विद्यालयो मे जैन रिसर्च फेलोशिप स्थापित करने की ओर प्रयत्न शील हैं, किन्तु इस कार्य मे उन्हे दिगम्बर समाज का प्राय कोई सहयोग प्राप्त नही है। ज्ञानोदय मासिक मे एकाध बार इस योजना का समर्थन तो किया गया, किन्तु सेठ शान्ति प्रसाद जी द्वारा साहित्यिक कार्यों के लिए स्थापित ट्रस्ट के प्रबधको ने भी कोई सक्रिय उपक्रम इस दशा मे अभी तक नही किया, यद्यपि यह उनके लिए सहज था। कोई ऐसा उत्कृष्ट जैन कालिज भी विद्यमान नही है जिसमे जैनालॉजी का एक पृथक विभाग हो और जैनाध्ययन की समुचित साधन सुविधाए हो। जैन कालिजो और स्कूलो की सख्या भी कुछ कम नही है, किन्तु वे नाम मात्र के लिए ही जैन हैं, अर्थात् वे केवल इसी कारण जैन नामाकित हैं क्योकि वे जैनो द्वारा उन्ही के धन से स्थापित और उन्ही के उद्योग से सचालित हैं। किन्तु उनके पाठ्यक्रम मे जैन साहित्य और सस्कृति का किसी प्रकार का कोई स्थान नही है। इसके अध्ययन अध्यापन के लिए ... साधन सुविधाए नही हैं। उनके पुस्तकालयो मे बिना मूल्य, भेंट,

दानादि द्वारा जैन पुस्तकें और पत्र पत्रिकाए भले ही आ जाय किन्तु उनके र कुछ व्यय करने की अथवा उनका सग्रह करने की कोई प्रवृत्ति नही है और कोई आवश्यकता ही समझी जाती है । उनमे अध्ययन करने वाले विद्यार्थियो जैन साहित्यादि के अध्ययन मे अभिरुचि और आकर्षण तो तब हो जबकि के अध्यापकों मे से भी कुछ की हो । यही दशा जैन छात्रावासो—जैन बोर्डिग ासो और होस्टलो की है ।

यह ठीक है कि वर्तमान युग धर्म स्वातन्त्र्य और असाम्प्रदायिकता का है एव सार्वजनिक लौकिक शिक्षा मे किसी धर्म अथवा सम्प्रदाय विशेष की मिक शिक्षा का सम्मिलित किया जाना उचित नही समझा जाता, वरन् य विधान द्वारा उत्तरोत्तर वर्जित किया जा रहा है । किन्तु किसी सस्कृति र तत्सम्बधित लोकोपयोगी साहित्य एव विचार धारा का अध्ययन साम्प्रदा- क अथवा धार्मिक कदापि नही कहला सकता । जब वेदो, उपनिषदो, हिन्दू शास्त्रो और पुराणो का, वैदिक परम्परा के न्याय, मीमासा, साख्य वैशेषिक दि षट् दर्शनो का, निर्गुण सगुण सम्प्रदायो और मध्यकाल के विभिन्न सन्त- ो का तथा धर्म सुधार आन्दोलनो का, बौद्ध दर्शन और सस्कृति का, इस्लाम इतिहास और परम्परा का, क्रिश्चियन थियोलाजी का अध्ययन अध्यापन । कि भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयो मे स्वीकृत है, साम्प्रदायिक धार्मिक नही समझा जाता तो फिर जैनोलाजी का, जैन सस्कृति—दर्शन, साहित्य और तिहास का अध्ययन अध्यापन साम्प्रदायिक अथवा धार्मिक क्यो समझा जाय ौर भारत के सास्कृतिक अध्ययन मे उसी की उपेक्षा क्यो की जाय । अवश्य : उसे अनिवार्य विषय न बनाकर ऐच्छिक या वैकल्पिक विषय बनाया । सकता है ।

उपरोक्त जैन कालिजो, स्कूलो, छात्रावासो आदि के लिए जिन स्थानो मे सस्थाए स्थित होती है, उनकी स्थानीय जैन समाज से तो भरसक द्रव्य प्रा- प्त किया ही जाता है, देश के अन्य विभिन्न प्रान्तो और स्थानो की जैन समाज भी पर्याप्त द्रव्य सग्रह किया जाता है । उस द्रव्य प्राप्ति के लिए समाज मे ो शिक्षा प्रचार सम्बन्धी अपीलें की जाती है उनमे सर्वाधिक बल इसी बात

पर दिया जाता है कि विकसित जैन सस्था जैनत्व की प्रभावना के लिए ही विद्यमान है, जैन धर्म, सस्कृति और साहित्य की अथक सेवा करना ही उनका व्रत है अत जैनो का कर्तव्य है कि उसके लिए यथा शक्य द्रव्य दान देकर विद्या दान का पुण्य लूटें। किन्तु यह सब वाग्जाल और धोका है, इन सस्थाओ मे से प्राय किसी ने भी अब तक कम मे कम अपनी ओर से जैन साहित्य और सस्कृति की कुछ भी सेवा नही की है। उनसे जैन साहित्य के लौकिक अ श के भी पठन पाठन और प्रकाशन को कोई प्रोत्साहन नही मिला है।

जो जैन सस्कृत विद्यालय हैं उनसे भी जैन साहित्य के सवर्धन मे विशेप सहायता नही मिल रही है, उनके कुछ फुटकर स्नातक व्यक्तिगत रूप से जैन साहित्य की अवश्य ही प्रशसनीय सेवा कर रहे है, पर वह अति सीमित और एकाँगी ही है। जैन समाज मे कई एक परीक्षा वोर्ड हैं, किन्तु उनके पठन-क्रम वहुत सीमित और रूढ है, उनके वैकल्पिक विपय अत्यल्प सख्यक हैं, इतिहास पुरातत्त्व और सस्कृति जैसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय भी उनमे सम्मिलित नही हैं, तुलनात्मक अध्ययन की कोई व्यवस्था नही है। इसके अतिरिक्त उनके अधिकारीगण जो जैसी पुस्तके उपलब्ध हैं उन्ही को अपने पठनक्रम मे रखकर सतोप कर लेते हैं। पठनक्रम के उपयुक्त नवीन पुस्तको के निर्माण कराने मे वे प्रवृत्त ही नही होते।

जैन साहित्य का, बाह्य जैनेतर समाज मे सम्यक् प्रचार करने की जैनो की दिली प्रवृत्ति ही प्रतीत नही होती अतएव उसके लिए उपयुक्त साधन भी नही जुटाये जाते। कितना ही सुन्दर, लोकोपयोगी या लोकरजक तथा प्रमाणीक प्रकाशन हो, सार्वजनिक पत्र पत्रिकाओ मे उसके विज्ञापन, समालोचनाए आदि निकलवाने की ओर कोई ध्यान नही दिया जाता। अजैन उसे एक साम्प्रदायिक रचना मान कर उपेक्षणीय समझते हैं और जैन उसे दूसरो को दिखाने की आवश्यकता नही समझते।

देश मे यत्र तत्र अनेक सार्वजनिक जैन पुस्तकालय एव वाचनालय भी खुलते जा रहे हैं, किन्तु उनमे भी जैन कालिजो और स्कूलो आदि की भाति

जैन पुस्तको और पत्र पत्रिकाओ को क्रय करके सग्रह करने की आवश्कता नहीं समझी जाती, बल्कि सस्ते, जासूसी, ऐयारी, घटना प्रधान अथवा रोमाचक उपन्यास कहानियो के ही सग्रह को विशेष महत्त्व दिया जाता है।

जैन साहित्य के स्वरूप का सम्यक् प्रचार न होने से नवयुवक विद्यार्थी वर्ग तथा पठनाभिरुचि रखने वाले वयस्क व्यक्ति भी पहले से ही यह मान बैठे हैं कि पठन क्रमान्तर्गत विषयो की दृष्टि से, लौकिक ज्ञानवर्द्धन की दृष्टि से, जीवन सम्बधी दैनिक आवश्यकताओ की दृष्टि से अथवा मनोरजन की दृष्टि से जैन साहित्य एक निरर्थक-बेकार की वस्तु है, उसका यदि कोई मूल्य है तो केवल धार्मिक है सो भी श्रद्धालुओ के लिये ही। और एक औसत व्यक्ति वास्तव मे इस दृष्टि को कोई विशेष महत्त्व नही देता, जो कुछ महत्त्व देता है वह रिवाजन या लिहाजन अथवा नाम और पुण्य दोनो एक साथ कमाने की ही नियत से देता है। किन्तु वास्तविकता तो यह है कि जैन साहित्य मे किसी भी अन्य साम्प्रदायिक साहित्य की अपेक्षा-और पुरातन भारतीय साहित्य का अधिकाश किसी न किसी सम्प्रदाय से ही सम्बन्धित है—उपरोक्त लोकतत्त्वो का बाहुल्य ही पाया जाता है। उसकी सहायता से पठनक्रमान्तर्गत अधिकाश विषयो को भी सवद्धित किया जा सकता है। यहा तक कि उसके गूढ सैद्धान्तिक एव दार्शनिक मन्तव्यो की भी कैसी समयानुसारी, लौकिक एव व्यावहार्य व्याख्या की जा सकती है यह बात भारतीय ज्ञानपीठ, काशी से हाल मे ही प्रकाशित तथा काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय के प्रोफेसर महेन्द्रकुमार जी द्वारा लिखित तत्त्वार्थवृत्ति की प्रस्तावना मे 'सम्यग्दर्शन' के विवेचन मे स्पष्ट अनुमानित की जा सकती है। किन्तु जैन साहित्य के स्वरूप का अभी प्रचार ही नहीं हुआ यद्यपि वर्तमान जैन पत्र पत्रिकाओ तथा नव प्रकाशित जैन साहित्य मे पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध है, पर उसे खरीद कर पढनेवालो का अभाव है। जैन समाज मे ऐसे श्रीमान ऐसे है जिनके यहा बहुभाग जैन पत्र-पत्रिकाए पहुचती रहती है प्रकाशित जैन पुस्तके भी पर्याप्त मात्रा मे आ जाती है, उन

सबका मूल्य प्राय धर्मादे की रकम मे से दे दिया जाता है । किंतु इन पुस्तको और पत्र पत्रिकाओ मे से अल्पाश का भी कोई उपयोग वे श्रीमान अथवा उनके परिवार का कोई व्यक्ति शायद ही करता हो । ये चीजें प्राय फालतूमद और रद्दी की टोकरी के उपयुक्त समझ ली जाती हैं—उन्हें विना देखे और पढे ही, हजार हजार, और दो दो हजार की जैन जनसख्या वाले स्थानो मे भी दो चार से अधिक ऐसे व्यक्ति न मिलेंगे जो मूल्य देकर जैन पत्र पत्रिकाए और जैन साहित्य मगाते हो । कितनी भी उच्च कोटि की पुस्तक हो अधिक से अविक एक हजार छपती हैं और वही सस्करण वर्षों के लिये पर्याप्त होता है, दूसरे सस्करण की नौवत ही नही आती । अत्यन्त उच्चकोटि की पत्रिकाए निकल रही हैं किंतु पांच छ सौ से अधिक किसी की भी ग्राहक सख्या शायद नही है । साप्ताहिक पत्रो मे से दो एक की एक हजार से कुछ ऊपर भले ही हो । इसमे दोष प्रकाशको और पत्र सम्पादको आदि का भी है । वे स्वय अपने साहित्य और पत्रो के व्यापक प्रचार के लिये प्राय कुछ भी सुव्यवस्थित उद्योग नही करते ।

इन्ही सब कारणो से जैन पुस्तक प्रकाशन, जैन पुस्तक विक्रय तथा जैन सामयिक पत्रो का व्यवसाय बहुत ही कम सफल और लाभदायक हो पाता है । अतएव व्यावसायिक जैन प्रकाशक, पुस्तक विक्रेता और पत्रकार अत्यल्प सख्यक हैं ।

जैन लेखको की दशा—जैन लेखको की दशा और भी बुरी है । जैन समाज मे विद्वानो, और अच्छे उच्चकोटि के लेखको की भी कोई कमी नही है, किंतु उपरोक्त परिस्थितियो मे कोई भी जैन विद्वान या लेखक निराकुलता पूर्वक साहित्य साधना नही कर सकता और न उसके द्वारा अपना और अपने परिवार का निर्वाह ही कर सकता है । अधिकतर लेखक तो अपनी कृतियो के लिए किसी प्रकार के पारिश्रमिक को प्राप्त करने का विचार ही नही करते, और यदि कोई कोई वैसा विचार भी रखते हैं और उसकी आवश्यकता अनुभव करते हैं तो वे उन्हें प्रकट करने का अथवा पारिश्रमिक की माग

करने का साहस ही नही रखते, वैसा करने मे बहुधा लज्जा और सकोच अनुभव करते हैं, परिणाम स्वरूप भले ही वह अपनी साहित्य साधना को त्याग दें, गौण अथवा शिथिल कर दें । बहुभाग जैन लेखक अपनी साहित्यिक अभिरुचि, साहित्य अथवा समाज सेवा की लगन या धार्मिक श्रद्धा के वश होकर अथवा केवल स्वान्त सुखाय ही लिखते हैं । उनकी साहित्य साधना मे कोई आर्थिक प्रयोजन प्राय रहता ही नही, विशेषकर इसी कारण से क्योकि वह दुष्कर है, लोकमत उनके अनुकूल नही है और क्योकि वैसा करने मे अपनी मान हानि के सिवाय और कोई लाभ नही दीखता । इन जैन लेखको का कोई सगठन नही है, कोई आवाज नही है । वे जो कुछ लिखते हैं उसके लिये बदले मे कुछ इच्छा या आकाक्षा न रखते हुए भी उसका प्रकाशन कराने मे भी बडी कठिनाई का सामना करना पडता है । एक व्यक्ति अपने जीवकोपार्जन के प्रयत्न को बाधा पहुचा कर अथवा उसके समय मे से ही जो कुछ अवकाश मिले उसमे तथा अपने स्वास्थ्य की परवाह न करके और आराम को तिलांजली देकर, स्वय ही सर्व साधन सामग्री जुटाये और परिश्रम तथा आवश्यक द्रव्यादि व्यय करके कोई पुस्तक लेखादि तैयार करे और फिर सामर्थ्य हो तो स्वय ही उसे प्रकाशित भी कराये तथा हो सके तो अमूल्य ही वितरण भी करदे, वर्न अपनी पाडुलिपि को देख देख कर खुश हुआ करे । अथवा वह किसी व्यवसायिक प्रकाशक या साहित्यिक सस्था, किसी धार्मिक या सामाजिक सभा सोसाइटी, अथवा किसी धनी मित्र अथवा रिश्तेदार की खुशामद करे । सम्भव है कि इस प्रकार उसकी रचना प्रकाशित हो जाय और यह भी सम्भव है कि सर्व प्रयत्नो के बावजूद भी वह प्रकाशित न हो । प्रकाशित होने पर उसे पुरस्कार या पारिश्रमिक मिलने की बात तो दूर है, यदि प्रोत्साहन और प्रशसा के दो शब्द तथा सूखा धन्यवाद मिल जाय तो बहुत है । जैन पत्रकार किसी भी लेखक के लेख का मूल्य, चाहे वह लेख किसी कोटि का क्यो न हो, अधिक से अधिक अपने पत्र के उस अक की जिसमे कि उक्त लेख प्रकाशित हुआ है, एक प्रति समझते हैं और उसे भेजकर भी बेचारे लेखक के ऊपर एक प्रकार

का एहसान ही करते हैं। चाहे कितना ही महत्त्व पूर्ण लेख हो उसकी अति-रिक्त प्रतियां लेखक को प्रदान करने की तो प्रथा ही नहीं है, लेख की पहुंच या स्वीकृति की सूचना देने अथवा अस्वीकृत होने पर उसे लौटा देने की तो आव-श्यकता ही नही समझी जाती। आर्थिक प्रतिदान की आशा न होने से लेखक व्यय साध्य सामग्री के सकलन एव उपयोग द्वारा अपनी रचनाओ को यथोचित प्रमाणीक, उपयोगी एव आकर्षक भी नही बना पाता। जैन समाज मे साहित्य की शोध, खोज एव निर्माण करने कराने वाली कई एक अच्छी सस्थाएं भी विद्यमान है जो प्राय सार्वजनिक अथवा सामाजिक द्रव्य की सहायता से संचालित हो रही हैं और जिनके सचालन मे कोई आर्थिक अथवा व्यवसायिक प्रयोजन नही है। किन्तु क्योकि वे स्वय इस दृष्टि से शून्य सी है अत जिन विद्वानो से वे साहित्य सृजन कराती है उन्हे भी स्वत इस दृष्टि से शून्य ही मान लेती है। ऐसी अवस्था मे सुलेखको का पर्याप्त संख्या मे सद्भाव होना और उच्च कोटि के साहित्य की सृष्टि करना दुष्कर व दुस्साध्य है, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

तथापि जब प्रकाशित हो चुके तथा हो रहे जैन साहित्य पर दृष्टि जाती है तो वह किसी भी अन्य भारतीय सम्प्रदाय अथवा समाज के साहित्य की अपेक्षा मात्रा मे भी कम नही है और किसी अंश मे भी निम्नतर कोटि का नही है तथा लोकतत्त्व की प्रचुरता भी उसमे अपेक्षाकृत पर्याप्त मात्रा मे है। इसका कारण यह है कि जैन समाज मे साक्षरो और शिक्षितो की सख्या एक पारसी समाज को छोड कर सर्वाधिक है, और उसकी सामान्य दशा भी इतनी समृद्ध अवश्य है कि नितान्त भूखे और दरिद्री इसमे बहुत थोडे है। धार्मिक साहित्य सृजन अधिकतर धार्मिक भावना के वश ही किया और कराया जाता है। व्यव-सायिक प्रकाशको और पुस्तक विक्रेताओ के अतिरिक्त अनेक अव्यवसायिक साहित्यिक संस्थाए, ग्रन्थ मालाए, ट्रस्ट आदि तथा स्थानीय पचायतें, धार्मिक सामाजिक सभा समितिये और अनेक स्त्री पुरुष जो ज्ञानदान वा शास्त्रदान को एक आवश्यक धार्मिक कृत्य समझते हैं, व्यक्तिगत रूप से भी पुस्तके प्रका-

शित करते कराते रहते हैं। कुछ उच्च कोटि की संस्थाओ मे तो सवैतनिक विद्वान भी साहित्यिक शोध खोज एव निर्माण कार्य करने लगे हैं। कभी-कभी पुरस्कार अथवा पारिश्रमिक देकर ठेके पर भी ये कार्य कराये जाने लगे हैं—यद्यपि ऐसे दोनो प्रकार के उदाहरण अभी अत्यल्प सख्यक ही हैं। कितने ही लेखक श्रेष्ठ विद्वान होने के साथ-साथ सुसमृद्ध भी हैं और वे निस्वार्थ भाव से उच्च कोटि के साहित्य सृजन मे पर्याप्त योगदान देते रहे हैं। ऐसे भी कितने ही उदाहरण हैं जबकि उक्त विद्वानो ने स्वय लिखा, अच्छा लिखा और बहुत लिखा और फिर अपनी सर्व या अधिकांश कृतियो को स्वद्रव्य से स्वय ही प्रकाशित करवाया अथवा अपने प्रभाव से एक वा अधिक धनी व्यक्तियो द्वारा प्रकाशित करवाया। त्यागी साधु महात्माओ के स्वप्रयत्न अथवा प्रभाव और प्रेरणा से भी बहुत सा साहित्य निर्मित और प्रकाशित होता रहता है।

वास्तव मे जैन समाज प्रधानतया दिगम्बर और श्वेताम्बर नामक दो सम्प्रदायो मे विभक्त है। लेखकों और प्रकाशको आदि की जिस दशा का वर्णन ऊपर किया गया है वह यद्यपि सामान्यत समस्त जैनसमाज पर लागू होती है तथापि ये दोष दिगम्बर समाज मे विशेष रूप से बढे चढे मिलते हैं। श्वेताम्बर जैनसमाज में ग्रन्थ प्रकाशन व्यवस्था अपेक्षाकृत अधिक सुव्यवस्थित एव सुसगठित है। उनके विद्वानो और लेखको की दशा भी पारिश्रमिक, पुरस्कारादिक की दृष्टि से बहुत अच्छी है। स्व साहित्य का बाह्य समाज मे प्रचार करने की श्रेयस्कर प्रवृत्ति भी उनमे रही है। उनका साधु समाज साहित्यिक कार्य मे यथाशक्य योग दान देता है किन्तु उनके साथ जो कमी है वह यह है कि उन दोनो की ओर से श्वेताम्बर गृहस्थ, दिगम्बर गृहस्थ की अपेक्षा कहीं अधिक उदासीन एव असहयोगी हैं। उनमे सुशिक्षित विद्वान् एव सुलेखक सख्या मे अत्यल्प हैं. अतएव साहित्यिक सस्थाओ, निर्मित साहित्य की उत्कृष्टता एव विपुलता तथा सामयिक पत्र पत्रिकाओं की दृष्टि से दिगम्बर समाज श्वेताम्बर समाज की अपेक्षा कुछ आगे ही है।

परन्तु, यदि जैन समाज को समय की गति के साथ-साथ सजीव रूप से

उन्नति पथ पर अग्रसर होना है, सभ्य ससार की दृष्टि मे उसे अपने आप को ऊचा उठाना है और स्वय उस ऊचाई के उपयुक्त बनना है तो उसे अपने साहित्य को प्रगतिशील एव समुन्नत बनाना ही होगा, अपने प्राचीन साहित्य रत्नो को ढग से ससार के सामने प्रस्तुत करके उनका तथा उनकी जननी जैन सस्कृति का महत्त्व प्रदर्शित करना और मूल्य अंकवाना होगा, लोक हितार्थ एव ज्ञान वर्द्धन के लिए उसका उपयुक्त सदुपयोग कराना होगा, उसका अधिकाधिक प्रचार एव प्रसार करना होगा, समाज के स्त्री पुरुष आवालवृद्ध मे सर्व व्यापी पठनाभिरुचि--पुस्तक आदि क्रय करके पढने और अध्ययन करने की प्रवृत्ति जागृत करनी होगी, जो व्यवित तनिक भी प्रतिभा सम्पन्न एव साहित्यिक अभिरुचि वाला हो उसे सर्व प्रकार प्रोत्साहन, जिसमे समुचित पुरस्कार पारिश्रमिक अत्यावश्यक है, प्रदान करके उस व्यक्ति मे जो सर्वोत्तम तथ्य है उसे साहित्य के रूप मे ससार को प्रतिदान कराने की सुचारु योजना करनी होगी और साहित्यिक अनुसधान, निर्माण एव प्रकाशन कर्तृ सस्थाओ, परीक्षा बोर्डो, विद्या केन्द्रो, सामयिक पत्र पत्रिकाओ तथा व्यक्तिगत विद्वानो और लेखको का केन्द्रीकरण नही तो कम से कम एक सूत्रीकरण करके उन्हे सुव्यवस्थित रूप से सुसगठित करना होगा, साहित्यगत अथवा सस्कृतिजन्य विविध विषयो का सुचारु विभाजन करके विषय विशेषो मे विशेषज्ञता प्राप्ति के प्रयत्नो को प्रोत्साहन देना भी वान्छनीय होगा। यह सब किये बिना इस द्रुत वेग से प्रगतिशील सघर्ष प्रधान युग मे जबकि न किसी व्यक्ति को अनावश्यक अवकाश है, न व्यर्थ के शौक पूरा करने की रुचि और साधन हैं और न धार्मिक श्रद्धा जीवन का कोई वास्तविक महत्वपूर्ण अ ग रहती जाती है, प्रत्युत परिगुणित होती हुई मानवी इच्छाए, वासनाए और आवश्यकताए तथा जीविकोपार्जन की जटिल समस्या एव स्वार्थ परता प्रत्येक व्यक्ति का गला बेतरह दबाये हुए है, किसी समाज और उस समाज की सस्कृति के लिए, चाहे वह कितनी भी महत्व पूर्ण क्यो न हो, उन्नति पथ पर अग्रसर होते रहना तो दूर की बात है, जीवित रहना भी अत्यन्त कठिन है।

ऐसी परिस्थितियो मे, प्रकाशित साहित्य का एक प्रकार का लेखा-जोखा और विवरण इसलिये परम आवश्यक हो जाता है कि इसके द्वारा जहा एक ओर लोक की तत्सम्बधी अनभिज्ञता दूर होकर उसे समाज विशेष अथवा वर्ग विशेष द्वारा किये गये योगदान का परिचय प्राप्त हो जाता है, राष्ट्र अथवा विश्व के भी साहित्य मे उनका उचित स्थान एव प्रगति निश्चित करने मे सुभीता हो जाता है, तथा उसके समुचित सदुपयोग द्वारा मानव की ज्ञानवृद्धि होती है उसकी ज्ञान साधना को नवीन साधन सहायता आदि मिलती है, वहा दूसरी ओर तत्तद समाज को भी यह ज्ञात हो जाता है कि उसके साहित्य की क्या स्थिति है, उसकी प्रगति की क्या अवस्था है, तथा उनमे कहाँ क्या त्रुटियें और दोष हैं, उसकी क्या आवश्यकताये है, जिनमे कि उक्त दोषो का निवारण और आवश्यकताओ की पूर्ती का प्रयत्न किया जा सके। विद्वानो अन्वेषको, पाठको, शिक्षको और सग्रह कर्ताओ, लेखको और प्रकाशको सभी को इस प्रकार के विवरण से अपने अपने कार्य मे पर्याप्त सुविधा हो जाती है। दूसरे, जैन साहित्य प्रकाशन की जिस दुरवस्था का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, उसकी अवस्थिति मे सभी प्रकाशित जैन पुस्तको का परिचय किसी भी व्यक्ति को सरलता से प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है। अत प्रकाशित जैन पुस्तको के एक यथासभव पूर्ण तथा सक्षिप्त परिचयात्मक विवरण की आवश्यता एव उपयोगिता स्पष्ट ही है। श्वेताम्बर जैन साहित्य के सम्बध मे ऐसी दो-एक सूचिये पहिले ही प्रकाशित हो चुकी हैं, यथा अध्यात्म ज्ञान भंडार प्रसारक मडल, पादरा (गुजरात) द्वारा प्रकाशित 'मुद्रित जैन श्वेताम्बर ग्रन्थ नामावली', तथा श्री आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर द्वारा प्रकाशित 'श्री जैन श्वेताम्बर ग्रन्थ गाइड' जिनमे कि उक्त समाज की मुद्रित प्रकाशित पुस्तको का विषयानुसार परिचय दिया गया है। इन दोनो सूचियो मे प्रथम सूची अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त, प्रसिद्ध श्वेताम्बर पुस्तक विक्रेता—सरस्वती पुस्तक भंडार, हाथीखाना, रतन पोल, अहमदाबाद के सूची पत्र मे प्राय सब ही प्रकाशित श्वेताम्बर जैन पुस्तकें दी हुई हैं। इन सूचियो की अवस्थिति मे तथा

शोधन एव समय के अभाव के कारण प्रस्तुत पुस्तक मे श्वेताम्बर साहित्य को सम्मिलित नही किया गया और प्रधानतया दिगम्बर समाज की ही मुद्रित प्रकाशित पुस्तको का विवरण दिया गया है।

मुद्रण कला का इतिहास--प्राचीन साहित्य की खोज करने वाले प्रसिद्ध विद्वान काका कालेलकर जी के शब्दो मे "यह बात बिल्कुल सही है कि जैसे लेखन कला के प्रचार से ज्ञान प्राप्ति का मार्ग सुलभ हुआ है वैसे ही छापने की कला के प्रचार से यह मार्ग सहस्त्र गुना अधिक सुलभ और विस्तृत हो गया है।" × जहा तक लेखन कला के आरभ का प्रश्न है वह सर्व प्रथम भारतवर्ष मे ही हुआ प्रतीत होता है। जैन अनुश्रुति के अनुसार कर्मयुग के आदि मे आदि पुरुष महा मानव ऋषभदेव ने अपनी प्रिय पुत्री ब्राह्मी के उपलक्ष से सर्व प्रथम मानवी लिपि का आविष्कार किया था। सिन्धु पुरातत्त्व मे उपलब्ध मुद्रालेख भी पाच छ हजार वर्ष प्राचीन हैं और उनसे अधिक प्राचीन लेख ससार के किसी अन्य भाग मे अभी तक प्राप्त नही हुए हैं। लेखन-कला के सर्व प्राचीन उदाहरण पाषाण आदि पर ही अकित मिलते हैं। तत्पश्चात् ताम्रपत्र आदि धात्वी साधनो का भी उपयोग होने लगा। फिर ताडपत्र, भुर्जपत्र आदि वानस्पतिक पत्रो पर लिखाई आरभ हुई। अन्तत सन् ईस्वी प्रथम सहस्त्राब्द के मध्य के लगभग कागज का प्रयोग आरभ हुआ।

छापे खाने का सर्व प्रथम आविष्कार चीन देश मे हुआ, और सर्व प्रथम ज्ञात मुद्रित चीनी पुस्तक की मुद्रण तिथि ११ मई सन् ८६८ ई० है। इस पुस्तक की छपाई ब्लाक प्रिन्टिग मे हुई थी, किन्तु अलग अलग बने टाइपो से छापने की कला का आविष्कार चीन देश मे ही पो० शेग नामक व्यक्ति के द्वारा सन् १०४१-४९ के मध्य हुआ। यूरोप मे मुद्रण का प्रारभ जर्मनी देश के निवासी जॉन गटेनबर्ग नामक व्यक्ति ने १५ वी शताब्दी ई० के मध्य मे किया था।

× प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० १६७,

भारतवर्ष में छापेखाने का प्रथम प्रवेश पुर्तगाली उपनिवेश गोआ के सेंट पॉल कालिज में, जेसुइट पादरियों की अध्यक्षता में जुआन बुस्टामान्टे नामक मुद्रक द्वारा सन् १५५६ ई० में हुआ। और भारत में मुद्रित सर्व प्रथम पुस्तक लातीनी भाषा की 'कनक्लूसोस फिलोसोफिकास' नामक दार्शनिक पुस्तक थी जो उसी वर्ष उक्त छापेखाने में छपी थी। यह पुस्तक तथा इसके बाद छपने वाली दूसरी पुस्तक भी अब उपलब्ध नहीं है। भारतवर्ष में मुद्रित सर्व प्रथम उपलब्ध पुस्तक उसी मुद्रणालय में सन् १५६० में छपी 'कोम्पेंदियु स्पिरितु आलद व्हिद क्रिस्तों' है जो न्यूयार्क (अमेरिका) के राष्ट्रीय सार्वजनिक पुस्तकालय में विद्यमान है।

इसके कुछ काल पश्चात् गोआ प्रदेश के अन्तर्गत ही रायतूर नामक स्थान के सेंट इग्नेशस कालिज में एक अन्य मुद्रणालय चालू हुआ जिसमें भारतीय भाषाओं में भी पुस्तकें छपने लगी। इस छापेखाने में मुद्रित भारतीय भाषा की सर्व प्रथम ज्ञात पुस्तक फादर थॉमस स्टीफेन्स कृत 'क्राइस्ट पुराण' थी। यह पुस्तक मराठी भाषा में ओवी नामक छन्द विशेष में लिखी गई थी किन्तु रोमन लिपि में थी, और यह सन् १६१६ ई० में मुद्रित हुई थी। चालीस वर्ष के बीच में इसके क्रमश तीन संस्करण प्रकाशित हुए थे, किन्तु उनकी एक भी प्रति आज उपलब्ध नहीं है, यद्यपि उसकी रोमन, कन्नड़ी, देवनागरी लिपियों में निबद्ध अनेक हस्तलिखित प्रतियां विद्यमान हैं उसी छापेखाने से सन् १६२२ में मुद्रित 'ख्रिस्ती धर्म सिद्धान्त' नामक मराठी भाषा और रोमन लिपि की पुस्तक आज भी उपलब्ध है। इसके उपरान्त डेनिश मिशनरियों और फिर अंग्रेज पादरियों ने इस दिशा में प्रयत्नशील होकर छापेखाने के प्रचार में योग दिया।

देवनागरी अक्षरों में ब्लाक प्रिंटिंग से छपा सर्व प्रथम लेख सन् १६७८ ई० का है। सन् १७९८ ई० में लिथोग्रफी का आविष्कार हुआ। इसमें टाइप बनाने की कठिनाई न होने के कारण शीघ्र ही इसका अत्यधिक प्रचार हो गया और १९ वीं शताब्दी में तो देशी भाषाओं के अनेक प्राचीन ग्रन्थ लिथो में छपे। १८ वीं शताब्दी के अन्त के लगभग ही बम्बई और बंगाल में सर्व

प्रथम एक-एक मुद्रणालय स्थापित हुआ। भारतीय मुद्रणकला के इतिहास में सीरामपुर (बगाल) के मुद्रणालय, मुद्रणकला विशारद सर चार्लर्स विल्किन्स, उनके सहयोगी शिष्य पचानन और ग्रहस्थ मिशनरी डा० विलियम कैरी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। उक्त सीरामपुर छापेखाने से १६ वी शताब्दी के पूर्वार्ध मे विभिन्न प्रान्तीय भाषाओ मे बाइबिल के अनुवाद धडाधड प्रकाशित हुए। धीरे-धीरे भारतीय पुस्तकें भी देशी भाषाओ मे छपने लगी। नागरी लिपि की सर्व प्रथम मुद्रित पुस्तके कुरियर-प्रेस, बम्बई द्वारा प्रकाशित 'विदुर नीति (१८२३ ई०) और 'सिहासन बत्तीसी' (१८२४ ई०) हैं, किन्तु इन दोनो की भाषा मराठी है। हिन्दी भाषा और नागरी लिपि की सर्व प्रथम पुस्तक इग्लैंड मे छपी थी और १६ वी शताब्दी के मध्य से वे भारतवर्ष मे भी छपने लगी।

जैन प्रकाशन का इतिहास—जैन साहित्य मे हिन्दी भाषा और नागरी लिपि की सर्व प्रथम पुस्तक प्रसिद्ध दिगम्बर विद्वान प० बनारसीदास (१७ वी शताब्दी) कृत 'साधु बन्दना' थी जो सन् १८५० मे आगरा नगर मे छपी थी। अतएव जैन पुस्तक साहित्य का अथवा उसके मुद्रण व प्रकाशन का प्रारम्भ सन् १८५० ई० से ही मानना उचित है।

वैसे तो, जहाँ तक पाश्चात्य जगत का प्रश्न है, यूरोपीय विद्वानो और प्राच्यविदो ने तो १६ शताब्दी के प्रारभ से जैन धर्म और सस्कृति मे दिलचस्पी लेनी प्रारभ करदी थी। सनु १७६६ ई० मे लेफ्टिनेन्ट विल्फ्रेड का 'त्रिलोक दर्पण' नामक जैन ग्रथ की एक प्रति हाथ लग गई। उनके स्वय के कथनानुसार ब्राह्मण पडितो ने साम्प्रदायिक विद्वेष के कारण उस पर कुछ भी प्रकाश डालने से साफ इन्कार कर दिया। × अतएव विल्फ्रेड साहब स्वय ही उस ग्रन्थ पर से जैनो के सम्बन्ध मे जो कुछ जान सके वह उन्होने 'एशियाटिक रिसर्चेज' भाग तीन पृष्ठ १६२ पर प्रकाशित कर दिया। विदेशी भ्रमणार्थियो

× विलफ्रेड आन दी एन्टीपेथी आफ दी ब्रह्मिन्स टू दी जेन्स—एशियाटिक रिसर्चेज भा० ३ पृ० ५१.

के द्वारा किये उल्लेखो को छोडकर पाश्चात्य विद्वानो द्वारा लिखित सर्व प्रथम जैन सम्बन्धी रचना यही है । सन् १८०९ मे कर्नल मेकेन्जी का निबन्ध 'ऐन एकाउन्ट आफ दी जेन्स' और एच० टी० कोलब्रुक का निबन्ध 'आवजर्वेशन्स आन दी जेन्स' कलकत्ते के एशियाटिक रिसर्चेज (जिल्द ९, पृ० २४३-२८६) मे प्रकाशित हुए । सन् १८२५ मे पादरी जे० ए० दुबाइ के सस्मरण पेरिस (फ्रान्स) से प्रकाशित हुए जिनमे जैन धर्म और जैन जाति के विषय मे बहुत कुछ लिखा है उसी वर्ष ए० स्टरलिंग ने 'उडीसा की जैन गुफाओ' पर अपना लेख प्रकाशित किया । सन् १८२७ मे फ्रेन्कलिन, हैमिल्टन, डेलमेन आदि विद्वानो ने जैन विषयक लेख लिखे । तदुपरान्त उक्त शताब्दी के मध्य पर्यन्त एच० एच० विल्सन, जेम्स टाड, जे० स्टीवेन्सन, जे० प्रिन्सेप, जे० फर्गुसन आदि विद्वानो ने अपने लेखों द्वारा जैन सम्बधी लोक ज्ञान की अभिवृद्धि की । किन्तु जैनधर्म सस्कृति साहित्य पुरातत्त्व और इतिहास पर व्यवस्थित शोध खोज और साहित्य सृजन सन् १८५० के पश्चात् ही प्रारभ हुए और इस दिशा मे पिशेल, होर्नले, फर्लांग, बुल्ले, ब्हूलर, जैकोबी, वेवर, लेमन, फ्लीट, राइस ड्रय, टामस, बूर्ड्स, बर्गेस, कीलहार्न, गिरनाट, स्मिथ, हुल्टज्श, क्लैट, ओल्डन बर्ग, किटेल, कनिंगहम हर्टले, मोनियर, विलियम्स, विन्टर निट्ज, पीटरसन, ल्यूमेन आदि विभिन्न जातीय प्रसिद्ध यूरोपिय प्राच्यविदो तथा भगवान लाल इन्द्र जी आर० जी० भडारकर, भाऊदजी, के० वी० पाठक, ध्रुव, तैलंग, राजेन्द्र लाल मित्र, सतीश चन्द्र विद्याभूषण, टी० के० लड्डू, के० पी० जायसवाल आदि प्रख्यात भारतीय विद्वानो ने प्रशसनीय कार्य किया । किन्तु इस शताब्दी के प्रारभ से ही इस कार्य मे कुछ शिथिलता आने लगी । प्रथम विश्व युद्ध के समय से तो उपरोक्त प्रकार के स्वतंत्र प्रकाड यूरोपीय विद्वानो का इस क्षेत्र मे प्राय' समाप्त ही हो गया । केवल पुरातत्त्वादि विभागो से सम्बधित कतिपय राजकीय अधिकारी ही प्रसगवश कुछ कार्य करते रहे । किन्तु साथ ही साथ यह सतोष है कि अनेक जैनाजैन भारतीय विद्वान इन कार्यों के सम्पादन मे लगे हुए है ।

जो कि आजकल इस विषय का बहुत कोलाहल है इस वास्ते इस सभा ने प्रयागस्थ जैनियो की अनुमति सर्व साधारण पर प्रकाशित करने के अभिप्राय से इस लेख को मुद्रित कराना आवश्यक समझा ।—सभा की आज्ञानुसार सुमतिचन्द्र मन्त्री जैनोन्नति कारक सभा, प्रयाग ।

लाला बच्चू लाल जी तथा इनके सहयोगियो के छापा विरोधी कितने ही लेख भी जैन गजट आदि पत्रो मे प्रकाशित हुए थे और अन्य कितने ही स्थानो की जैन पचायतो ने भी उपरोक्त जैसे प्रस्ताव पास किये थे। ता० १७ जनवरी सन् १८९८ के जैन गजट मे प्रकाशित अपने एक लेख मे इन्ही बच्चू लाल ने स्पष्ट लिखा था कि "जैन शास्त्रो का छपाना महान अविनय है अत भयङ्कर पाप बध का कारण है, और जो जैन शास्त्र अजैनो के हाथ मे पहुचे भी हैं वे श्वेताम्बर आम्नाय के ही पहुचे । दिगम्बरो को ऐसी मूर्खता नही करनी चाहिए, उन्हे अपने शास्त्र कदापि नही छपाने चाहियें और न दूसरो के हाथ में देने की भूल करनी चाहिये ।"

इसमे सन्देह नही कि उनके धर्म भीरु और अदूरदर्शी साधर्मियो ने इन सदुपदेशो पर आचरण करने का अथक प्रयत्न किया । अभी १०-१२ वर्ष पूर्व ही जब धवलादि दिगम्बर आगम ग्रन्थो का मुद्रण प्रकाशन प्रारम्भ हो रहा था तो कई एक अनेक पदवियो एव उपाधियो से अलकृत दिग्गज जैन पण्डितो ने आगम ग्रथो के छपाये जाने और गृहस्थो द्वारा उनका पठन पाठन किये जाने का भारी विरोध किया था । आज सन् १९५० मे भी यत्र तत्र ऐसे धर्म भीरु श्रीमान मिल ही जाते हैं । जो छपे शास्त्रो का पढना तो दूर रहा उन्हें छूने मे भी पाप समझते हैं और परम पूज्य जिन वाणी की इस दुर्दशा पर आसू बहाया करते है ।

किन्तु, समाज मे अब ऐसे विवेकशील व्यक्ति भी उत्पन्न होने लगे जिन्होने नवीन प्रणाली के अनुसार शिक्षा प्राप्त की थी और जिन्हे पाश्चात्य विचार धाराओ के सम्पर्क मे आने का सुयोग मिला था । शनै शनै उनकी सख्या बढने लगी । ये नव युवक समय के साथ-साथ चलना चाहते थे, प्रगति शील

युग की प्रगति से पिछड जाने के लिए तैयार नही थे, वे नवीन सभ्यता के नित्य प्रकाश मे आने वाले आविष्कारो को अपनाना अन्य समाजो के उन्नतिशील वर्गों की भाति ही अपनी समाज के लिए भी परम आवश्यक समझते थे। उनका विश्वास था कि अब अन्धकार को भेद कर बाहर प्रकाश मे आने का युग है, अतएव उन्होंने इरादा कर लिया कि अपने अमूल्य साहित्यिक रत्नो को मुद्रण कला की सहायता से बहुलता के साथ प्रकाश मे लाकर स्वय उनसे अधिकाधिक लाभ उठावें ही, साथ ही दूसरे जिज्ञासुओ को भी अपने धर्म, साहित्य और सस्कृति के अध्ययन करने का तथा महत्त्व समझने का सुयोग प्रदान करें।

फलस्वरूप १९वी शताब्दी के मध्य के लगभग छापे के पक्ष मे आन्दोलन आरम्भ हुआ। प्रथम पच्चीस वर्षो मे वह कुछ प्रगति न कर पाया किन्तु सन् १८५७ के पश्चात् इस आन्दोलन ने उग्र रूप धारण किया। उधर इस आन्दोलन के बढ़ते हुए बल के साथ-साथ स्थिति पालको का विरोध भी अधिकाधिक जोर पकडने लगा। वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ तक यह द्वन्द बडे सघर्ष के साथ चला। आन्दोलन कर्त्ताओ को धमकियें दी गई, पीटा गया, जाति से बहिष्कृत किया गया, उनका मन्दिर मे आना बन्द किया गया, स्थान स्थान मे इस प्रश्न को लेकर दल बन्दियें हो गई। हमारे नगर मेरठ का ही एक दिलचस्प उदाहरण है। एक महाशय एम० ए० एल० एल० बी० वकील थे और वे उस युग के एम० ए० थे जब प्रान्त भर मे दर्जन दो दर्जन से अधिक एम० ए० नहीं थे। किन्तु वे इतने कट्टर स्थिति पालक थे और धर्म ग्रन्थो की छपाई के तथा छपी पुस्तकों को मन्दिर में लाने के इतने भारी विरोधी थे कि एक बार जब कुछ नवयुवक आन्दोलन कर्त्ताओं ने देव पूजन को उपयुक्त शुद्ध वस्त्रादि पहन और सामग्री लेकर एक छपी पुस्तक की सहायता से पूजन करने का इरादा किया तो जिस वेदी मे देव प्रतिमाएँ विराजमान थी, वे महाशय उस वेदी के सामने दोनों हाथो से दुपट्टे का पर्दा तानकर और वेदी को ढक कर खड़े हो गये और यह कहा कि किसी प्रकार भी छपी पुस्तक से पूजन

नही करने देंगे । जबतक वे पूजोद्यत नवयुवक वेदी गृह मे रहे ये महाशय अपने स्थान से तनिक भी टस से मस न हुए। इसी प्रकार की छापा विरोधी विविध घटनाएं स्थान स्थान मे हुई । तथापि अन्तत २०वी शताब्दी के प्रथम दसक मे आन्दोलन सफल हो गया और विरोध शिथिल प्राय हो गया।

इसमे भी सन्देह नही कि उक्त आन्दोलन मे श्वेताम्बर सम्प्रदाय ने कुछ शीघ्र ही सफलता प्राप्त करली थी। श्वेताम्बर समाज मे धार्मिक विषयो मे उनके बहु सख्यक साधु वर्ग का ही प्रभुत्व रहता आया है, उनके निर्णयो और आदेशो को गृहस्थ जन 'बाबा वाक्य प्रमाणम्' मानते है और इस प्रसग मे उनकी यह प्रवृत्ति सुफलदायी ही हुई। इन साधुओ मे से कुछ दूरदर्शी महात्माओ को यह सुबुद्धि शीघ्र ही उत्पन्न हो गई कि जब छापा देश मे आ ही चुका है और देर सवेर इसे अपनाना ही होगा तो क्यो न धर्म ग्रन्थो की छपाई पर से शीघ्र ही प्रतिबन्ध हटा दिया जाय। फल यह हुआ कि दिगम्बर साहित्य की अपेक्षा श्वेताम्बर साहित्य बहुत पहिले छपने लगा और सन् १८७० से १८९० के बीच सैकडो श्वेताम्बर ग्रन्थ प्रकाश मे आ गये। सौभाग्य से यह समय ऐसा था जब दर्जनो उच्च कोटि के पाश्चात्य विद्वान् और प्राच्यविद भारतीय धर्मो, दर्शनो, सस्कृति, पुरातन साहित्य एव कला, पुरातत्त्व, जातियो के इतिहास आदि विविध विषयो के अध्ययन मे गहरी दिलचस्पी ले रहे थे। छापे के समर्थक उक्त श्वेताम्बर साधुओ और गृहस्थो ने इन विद्वानो के लिए अपना साहित्य सुलभ कर दिया और उनके द्वारा उसके उपयोग मे किसी प्रकार की रुकावट डालने के स्थान मे उलटा उन्हे भरसक प्रोत्साहन, सहयोग और सुविधा प्रदान की।

परिणामस्वरूप, जबकि १९ वी शताब्दी के मध्य तक बाह्य जगत के विषयो मे साधारण जीर्ण रुचि रखने वाले विद्वानो को जैन-विषयक जो कुछ टूटी फूटी अल्प जानकारी जैनेतर भारतीय साहित्य से जैन समाज के किसी अग विशेष बाह्य सम्पर्क के कारण, अथवा शीघ्र ही ध्यान को आकर्षित कर लेने वाले किसी जैन पुरातत्त्व से हुई थी तथा उसी से सतोष कर इन विद्वानो

ने इस धर्म और समाज के विषय मे अपनी अपनी धारणायें बनाली और प्रकट करदी थी, अब उसी शताब्दी के अंतिम चतुष्पाद मे इस दिशा मे कार्य करने वाले प्रतिभाशाली विशेषज्ञो को स्वय जैन साहित्य और जैनो का ही सहयोग प्राप्त हो गया। उन्हें यह भी बताया गया कि वास्तविक, मौलिक, सर्वप्राचीन और अधिकांश जैन साहित्य यही (श्वेताम्बर आगमादि) हैं। ऐसा बताये जाने पर उसे वैसा ही न मानने का उनके लिए कोई कारण भी न था। अतएव उक्त विशेषज्ञो और उनके अनुकर्ता भारतीय विद्वानो का जैनाध्ययन तथा उनके तत्सबधी अधिकाश निर्णय उसी साहित्य के आधार पर आधारित हुए, और इस कारण वे कुछ सदोष रहे तथा अंशत ही सत्य हो सके। किन्तु इसके लिए न वे जैनेतर विद्वान ही दोषी है और न दूर दर्शी श्वेताम्बर साधु और उनके गृहस्थ अनुयायी ही। यदि कोई दोषी है तो वे दिगम्बर जैन पडित और श्रीमान है जो अपनी समाज मे बहु सख्यक शिक्षितो और अनेक श्रेष्ठ विद्वानो के होते हुए भी परस्पर की तनातनी और आन्दोलन के पक्ष विपक्ष मे पडकर इतनी दूर तक देख ही नही सके और सभवतया आज भी इस दिशा मे उपयुक्त दृष्टि प्राप्त करने मे सफल नही हो सके।

अस्तु, जैन पुस्तक साहित्य के इतिहास का प्रारंभ सन् १८५० अथवा विक्रम सवत् १९०० के लगभग से होता है। आधुनिक शैली मे व्यवस्थित जैनाध्ययन का प्रारभ और हिन्दी जैन साहित्य के आधुनिक युग का प्रारभ भी इसी समय से होता है। स्वय अखिल भारतीय दृष्टि से भी राष्ट्रीयता का उदय, सास्कृति अध्ययन का प्रारंभ और हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग भी सनु १८५७ के स्वातन्त्र्य समर के उपरान्त ही सनु १८६० से अथवा वि० स० १९२० के लगभग से ही माना जाता है।

युग विभाजन—की दृष्टि से, विशेषकर दिगम्बर जैन साहित्य के मुद्रण प्रकाशन के इतिहास को तीन युगो में विभाजित किया जा सकता है—(१) आन्दोलन युग सन् १८५०–१९०० ई०, (२) प्रगति युग सनु १९००–१९२५, और (३) वर्तमान युग–१९२५ के उपरांत।

(१) आन्दोलन युग (१८५०-१९००)—जैन साहित्य प्रकाशन के इस प्रथम युग मे धार्मिक साहित्य के मुद्रण प्रकाशन का आन्दोलन आरंभ हुआ। प्रथम पचीस वर्षों (१८५०-७५) मे इस आन्दोलन ने प्राय: कोई प्रगति नही की और इस बीच मे दो चार पुस्तके छपी हो तो छपी हो, किन्तु उनके विषयमे कुछ ज्ञात नही। सन् १८७५ और १९०० के बीच आन्दोलन ने वास्तविक जोर पकडा और प्रवल विरोध के होते हुए भी पुस्तके छपने लगी। यह समय भी आन्दोलन के अत्यन्त अनुकूल पडा। देश की तत्कालीन जैन समाज की वाह्य परिस्थितियें भी, चाहे परोक्ष रूप से ही सही, उसकी प्रगति और सफलता मे अत्यधिक सहायक सिद्ध हुई। सन् १८५७ के स्वातत्र्य समर के उपरान्त दस पाँच वर्ष तो उक्त असफल महान राजनैतिक क्रान्ति से उत्पन्न व्यापक आतक के शान्त होने मे लगे, किन्तु धीरे धीरे महारानी विक्टोरिया की, कम से कम बाह्यत उदार नीति के कारण तथा युद्ध, विद्रोह, दगे आदि के अभाव मे १९ वी शताब्दी का शेष उत्तरार्ध भारतीय प्रजा के लिए विदेशी शासन के अ तर्गत सर्वाधिक शान्ति पूर्ण रहा। समय की आवश्यकता और राज्य के प्रोत्साहन से शिक्षा का भी प्रचार बढा, विश्व विद्यालय स्थापित होने लगे, स्थान स्थान मे स्कूल कालिज खुलने लगे। अ गरेजी मे ही नही भारतीय भाषाओ मे भी समाचार पत्र प्रकाशित होने लगे। यूरोप आदि समुद्र पार विदेशो मे भी कितने ही उत्साही एव निर्भीक भारतीय गमनागमन करने लगे। रेल पथ की स्थापना और डाक तार आदि की द्रुत व्यवस्था, जन साधारण को कूप मडूकता से बाहर निकालने लगी। अ गरेजी शासन मे भारत वर्ष की सनातन एकता प्रत्यक्ष होने लगी, सम्पूर्ण देश और समाज की राष्ट्रीय तथा सामाजिक उन्नति के इच्छुक और उनके लिये प्रयत्न शील नेता भी उत्पन्न होने लगे। सन् १८८६ मे राष्ट्रीय महासभा काग्रेस की स्थापना हुई जिससे एक प्रकार के राष्ट्रीय राजनैतिक आन्दोलन का भी श्रीगणेश हो गया। पाश्चात्य विचार धाराओ की निरन्तर लगने वाली टक्करो और बढती हुई वहुज्ञता के फल-स्वरूप भारतीयो के सामाजिक एव धार्मिक दृष्टिकोणो मे भी विवेक, उदारता

और विशालता लाने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी । धार्मिक, अन्धविश्वास अशिक्षा अथवा कुशिक्षा जन्य नाना प्रकार के वहम, जातिपाति, छुआछूत, रूढ़ि पालकता, स्त्री जाति के प्रति अन्याय, बाल विवाह, वृद्ध विवाह, बहु विवाह, अनमेल विवाह, विधवा विवाह, दहेज आदि विनाशकारी कुरीतियाँ एवं कुप्रथाएं देश और समाज के भक्तों को बुरी तरह व्याकुल करने लगी । फलस्वरूप राजा राममोहनराय तथा महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर आदि सुधारकों ने बंग प्रदेश मे उत्कट सुधारवादी ब्राह्म समाज की स्थापना की, किन्तु यह संस्था बंगाली समाज मे ही सीमित रही । ब्राह्म समाज से कहीं अधिक व्यापक स्वामी दयानन्द सरस्वती का आर्य समाज आन्दोलन रहा । आर्य समाज ने जहाँ भोले हिन्दू समाज के ईसाई मिशनरियों और मुसलमान गुटों के प्रयत्नों के कारण दिन प्रति दिन क्षीणतर होते जाने में सफल रोक लगाई, जहां उसने सनातन हिन्दू धर्म में आ घुसे अनेक वहमों, अन्धविश्वासों, पोपडम आदि के प्रति उसे सजग किया, और उसकी अनेक कुरीतियां छुड़ाईं, वहाँ मिथ्या धार्मिक दम्भावेश में और जान बूझ कर अनभिज्ञ रहते हुए वैदिक एवं हिन्दू धर्म के चिर कालीन संगी सम्बधी जैनादि धर्मों का कुत्सित परिहास और खंडन भी किया तथा उनके विषय मे मिथ्या एवं भ्रान्ति पूर्ण धारणाएं फैलाईं ।

तथापि आर्य समाज और उसके नेताओं की इस प्रवृत्ति का परिणाम जैन समाज के हक मे अच्छा ही हुआ । वह भी सचेत हो गया और उसके सुधार-वादी नेताओं को अपने पक्ष मे एक और प्रबल युक्ति मिल गई । अब जैन धर्म और समाज की रक्षार्थ आर्य समाज के आक्षेपों का सयुक्तिक परिहार करना आवश्यक था, उन्हें समुचित प्रत्युत्तर देने थे, और अपने साहित्य को प्रकाश में लाकर उनके तथा उनके द्वारा फैलाये गये भ्रमों एवं मिथ्या धारणाओं का निराकरण करना था । फलतः आर्य समाज द्वारा किये गये आक्षेपों को लेकर जैनों द्वारा भी उस युग की शैली के अनेक खंडन मंडनात्मक पुस्तकें लिखी गई और प्रकाशित की गई । आरंभ में फर्रुखनगर निवासी ज्योतिषी वैद्य पं०

जीयालाल जैनी ने इस आर्य जैन द्वन्द का नेतृत्व किया, उन्होंने स्वय आर्य समाज के मन्तव्यो के विरोध मे कई पुस्तकें लिखीं, आर्य समाजी विद्वानो से अनेक शास्त्रार्थ किये, जैन ज्योतिष का भी प्रचार किया तथा जैन पञ्चाग का प्रकाशन आरभ किया, और सन् १८८४ मे 'जैन प्रकाश' नामक एक समाचार पत्र निकाला जोकि जैन समाज का सर्व प्रथम सामयिक पत्र था। देवबंद निवासी स्व० बा० सूरजभान जी वकील ने, जोकि जैन छापा आन्दोलन के प्राण थे, इस परिस्थिति से पूरा पूरा लाभ उठाया। सामाजिक अत्याचार, बहिष्कार, अपमान, लाञ्छना आदि अनेक विघ्न-बाधाओ और अडचनों की अवहेलना करते हुए वे सफलता प्राप्त करते ही चले गये। आर्य समाज के प्रति खडन मडन में भी उन्होंने पर्याप्त भाग लिया। शनै-शनै. उनके सहयोगियो की सख्या पर्याप्त हो गई, जिनमे कि प० चन्द्रसेन जैन वैद्य इटाया, प० जुगलकिशोर मुख्तार सरसावा, प० मगलसेन जैन वेद विशारद, मा० बिहारीलाल चतन्य बुलन्दशहरी, ला० शिब्बा मल, अम्बाला छावनी, ला०ज्योति प्रशाद प्रेमी, देववन्द विशेष उल्लेखनीय हैं। इस खडन मडन के लिए अपने आर्ष ग्रन्थो में निबद्ध जैन सिद्धात के वास्तविक रहस्य को जानने और समझने की भी आवश्यकता थी और इस त्रुटि की पूर्त्ती स्व० गुरुवर्य प० गोपाल दास जी बरैया ने की, जोकि अपने समय के सर्व श्रेष्ठ जैन सिद्धात पारगामी एवं दार्शनिक तो थे ही साथ ही साथ उदार विचारक एवं सुधारवादी विद्वान भी थे। उन्होंने स्वय भी आर्य समाजी विद्वानो के साथ कई शास्त्रार्थों मे भाग लिया। उनके सहयोग से आर्य समाज विरोधी और छापा प्रचार सम्बधी दोनो ही आन्दोलनों को भारी बल मिला। धीरे धीरे जैन आर्य द्वन्द शिथिल होने लगा, अब थोडे से ही विद्वान उनके लिए पर्याप्त थे, जिनके प्रयत्नों के फलस्वरूप और विशेष कर ला० शिब्बामल के उत्साह पूर्ण सहयोग से आगे चलकर अम्बाला दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ सघ की स्थापना हुई। कई दशक पर्यन्त इस सघ के विशेपज्ञ विद्वानो और वादियो ने आर्य समाज से खूब लोहा लिया। कुछ समय के उपरात इसकी भी आवश्यकता नही रह गई। फलस्वरूप उक्त सघ ने अब

अपने नाम, उद्देश्य, स्थान और कार्य क्षेत्र सभी मे परिवर्तन कर डाला है ।

गदर के बाद नवीन शासन व्यवस्था की स्थापना के साथ ही साथ ब्राह्मण जैन विद्वेष एक अन्य दिशा में भी चरितार्थ हुआ । विदेशी शासको की अनभिज्ञता का अनुचित लाभ उठाकर सनातनी हिन्दुओं ने स्थान स्थान मे जैन रथोत्सव और मन्दिर निर्माण का भी विरोध किया और ,जैनी दण्डिनम्' जैसी अत्यन्त आक्षेपपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित की । उभय पक्ष में मुकदमे बाजियाँ भी हुई, और तत्सम्बधी खंडन मंडनात्मक साहित्य भी प्रकाशित हुआ । किन्तु तत्कालीन सरकार ने सर्व धर्म स्वातन्त्र्य तथा किसी के धार्मिक मामलो मे हस्तक्षेप न करने की अपनी नीति स्पष्ट घोषित करदी थी जिसके फलस्वरूप जैनी इस आक्रमण से भी अपने धार्मिक सत्त्वो की रक्षा करने मे सफल हुए ।

बा० सूरज भान जी वकील को जैन समाज का दादा भाई नौरोजी ठीक ही कहा जाता है । उनकी समाज सेवा का काल इस युग मे सर्वाधिक दीर्घ होने के साथ ही सर्वतोमुखी भी रहा है । उन्होंने अपने उत्साही सहयोगियो के साथ समाज मे शिक्षा प्रचार करने का, विशेषकर स्त्रियो और बालिकाओं की शिक्षा का, जिसका कि विरोध स्थिति पालक दल छापे की भांति ही दृढ़ता के साथ कर रहा था, बीड़ा उठाया । स्थान-स्थान मे जाकर प्रचार करना, व्याख्यान देना, शास्त्र का पठन और स्वाध्याय प्रेम बढाना, बाल एवं कन्या पाठशालायें खुलवाना, छोटे २ सरल ट्रैक्टों तथा व्याख्यान मालाओं द्वारा सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न करना आदि अनेक समयोपयोगी प्रोग्राम इन्होंने अपनाये । बा० सूरजभान जी ने स्वयं अपने सम्पादकत्व में 'जैन ज्ञान प्रकाश' (हिन्दी) 'जैन हित उपदेशक' (उर्दू) जैसे समाचार पत्र निकाले । सन् १८८६ मे पं० चुन्नीलाल, मुन्शी मुकन्दलाल व पं० प्यारे लाल आदि के सहयोग से मथुरा में दिगम्बर जैन महा सभा की स्थापना हुई और सन् १८६४ से उक्त सभा ने अपना पत्र 'जैन गजट' (हिन्दी) निकालना प्रारंभ

किया । कालान्तर मे सभा की नीति से मतभेद होने के कारण कुछ अधिक सुधारवादी सज्जनो ने जैन यग मेन्स एसोसियेशन (भारत जैन महा मडल) की स्थापना की, जिसने जैन गजट नाम से ही अ ग्रेजी भाषा मे अपना एक मासिक पत्र निकालना प्रारभ किया । हिन्दी जैन गज़ट अभी तक महा सभा की ओर से ही निकल रहा है। सन्न १८९७ के अ त मे महा सभा ने अपने एक अधिवेशनमे बालिका-शिक्षाके पक्षमे भी प्रस्ताव पास कर दिया था। महासभा के प्रचारक ग्राम २ मे पहुचे । उदाहरणार्थ लेखक के मातामह स्व० ला० शिताबराय जी ने, जो जिला मेरठ की तहसील बागपत, परगना बडौत के सुदूरस्थ ग्राम ख्वाजा नगला के निवासी थे और महासभा के एक उत्साही सदस्य और कार्यकर्त्ता थे, आस पास के कितने ही ग्रामो के जैनियो मे शिक्षा प्रचार का स्तुत्य प्रयत्न किया था और कई एक जाट, बढई आदि अजैनो को जैनी बनाया, जो कि आजन्म इस धर्म के भक्त रहे ।

इसी युग मे शोलापुर के प्रसिद्ध समाज सेवी सेठ रावजी हीराचन्द नेमचन्द दोशी ने समय की आवश्यकता का अनुभव करते हुए, सितम्बर सन् १८८४ ई० मे 'जैन बोधक' नामिक मराठी-हिन्दी-गुजराती पत्र की स्थापना की थी। सन् १८९३ मे दि० जैन महासभा के मथुरा मे होने वाले चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन मे जब छापे के प्रश्न को लेकर घोर वादविवाद हुआ तो उक्त राव जी ने छापे का जोरदार समर्थन किया था और उसी समय से उन्होने अपने जैन बोधक मे शास्त्रीय प्रमाणो और युक्तियो के द्वारा छापा आन्दोलन को अत्यधिक प्रोत्साहन देना प्रारम्भ कर दिया। महासभा के इसी अधिवेशन मे प्रबल विरोध के रहते हुए भी छापे के पक्ष मे प्रस्ताव पास हो गया तथा महासभा के मुख पत्र जैन गजट के निकाले जाने की योजना हुई।

इसी समय प्राचीन आर्ष सैद्धान्तिक ग्रन्थो के अध्ययन की प्रवृत्ति भी चल पड़ी जिसमे पं० गोपालदास जी बरैया विशेष सहायक हुए । अभी तक दिगम्बर आम्नाय मे आगम के रूप मे ग्रन्थराज गोमट्टसार की ही प्रसिद्धि और प्रचलन था, किन्तु अब यह बात सुस्पष्ट रूप से प्रकाश में आई कि गोमट्ट-

सारादि के भी आधार भूत अति प्राचीन एवं विशालकाय ग्रन्थ धवलादि हैं जिनकी एक-मात्र ताडपत्रीय प्रति मैसूर राज्य के अन्तर्गत मूडबद्री के प्राचीन शास्त्र भण्डार में सुरक्षित है। अतएव उक्त राव जी ने उन महान आगम ग्रन्थों के उद्धार का प्रयत्न चालू कर दिया। इस कार्य में उन्हें उन्हीं जैसे धर्म प्राण समाज सेवी धनिक आरा निवासी स्व० बा० देवकुमार जी तथा बम्बई के दानवीर सेठ माणिकचन्द्र जी जौहरी जे० पी० आदि सज्जनों का बहुमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ। इन महानुभावों के २५-३० वर्ष पर्यन्त सतत् उद्योग करते रहने के फलस्वरूप धवलादि ग्रन्थों की प्रतिलिपियां मूडबद्री के भण्डार की सीमा के बाहर निकल आईं। बा० देवकुमार जी ने आरा में जैन सिद्धान्त भवन (दी सैन्ट्रल जैना ओरियंटल लाइब्रेरी) नामक महत्त्वपूर्ण जैन पुस्तकालय एवं संग्रहालय की स्थापना करके साहित्यिक शोध खोज एवं ग्रन्थ प्रकाशन के कार्य को और भी प्रगति दी। दान वीर सेठ माणिकचन्द के उद्योग से अखिल-भारतीय जैनों के विवरण से युक्त एक जैन डायरेक्टरी प्रकाशित हुई। माणिकचन्द्र दि० जैन० ग्रन्थ माला तथा माणिकचन्द्र दि० जैन परीक्षा बोर्ड बम्बई की स्थापना का श्रेय भी इन्हें ही है, और दि० जैन महासभा की बम्बई प्रान्तीय शाखा के प्रमुख कार्यकर्ता भी यही थे।

साहित्य प्रचार और छापे के भारी समर्थक बाल ब्रह्मचारी प० पन्नालाल जी बाकलीवाल ने काशी में दिगम्बर जैन सिद्धान्त प्रकाशनी संस्था की स्थापना की और उसके अपने ही प्रेस में जयपुर आदि के हाथ के बने शुद्ध स्वदेशी कागज पर शास्त्राकार खुले पन्नों में, अपने यहां ही तैयार की गई स्याही से सवर्ण कर्मचारियों की सहायता द्वारा धार्मिक ग्रन्थों का मुद्रण प्रकाशन प्रारम्भ किया। इस योजना द्वारा उन्होंने स्थिति पालक दल के विरोध की तीव्रता को अत्यन्त शिथिल कर दिया। काशी में थोड़े ही काल रहने के उपरान्त यह संस्था कलकत्ते को स्थानान्तरित करदी गई। संस्था को वहां चालू करके बाकलीवाल जी बम्बई चले गये जहां उन्होंने 'हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर' नामक एक सार्वजनिक हिन्दी प्रकाशन संस्था

को जन्म दिया और 'देश हितैषी' नामक पत्र भी निकालना प्रारम्भ किया। थोड़े समय के उपरान्त उन्होने इन दोनो को जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय और जैन हितैषी (मासिक) के रूप में परिवर्तित कर दिया। आगे चलकर उपरोक्त सस्था की ही एक शाखा 'हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई के नाम से प्रसिद्ध हुई। बाकलीवाल जी ने ही सर्व प्रथम बंगाली समाज मे जैन धर्म का प्रचार करने का विचार किया और उसके हेतु बगला भाषा मे 'जैन धर्मेर किंचित परिचय' तथा 'जैन सिद्धान्त दिग्दर्शन' नामक पुस्तकें सन् १९१० मे निर्माण की। बगला पत्र 'जिनवाणी' के जन्मदाता भी यही थे।

इस प्रकार इस युग के अन्त तक छापा आन्दोलन प्राय. सफल हो गया था। विरोध उसके पश्चात् भी दसियो वर्ष चलता रहा किन्तु वह पर्याप्त शिथिल हो गया था। इस युग के प्रकाशनो मे निम्नोक्त तीन प्रकार की पुस्तको का ही वाहुल्य था:-(१) धार्मिक खण्डन मण्डनात्मक, विशेषकर आर्य समाज के आक्षेपो को लक्ष्य मे रखकर, (२) मोटी मोटी सामाजिक कुरीतियो के निवारणार्थ लिखे गये छोटे छोटे ट्रैक्ट आदि, (३) पूजा पाठ, भजन विनती, व्रत कथाए, कतिपय पुराण चारित्र आदि ग्रन्थ।

इस युग मे पुस्तक प्रकाशन का कार्य विभिन्न व्यक्तियो द्वारा स्वतन्त्र रूप मे प्राय निस्वार्थ एव धर्मार्थ भाव से ही अधिक चला। लाहौर के हकीम ज्ञानचन्द्र जैनी तथा देवबन्द-सहारनपुर के ला० जैनीलाल ने विशेषकर तीसरे प्रकार की छोटी छोटी पस्तकें वहु सख्या मे प्रकाशित की। खण्डन-मडनात्मक साहित्य विशेषकर फर्रुखनगर, इटावे, अलीगढ और सहारनपुर से प्रकाशित हुआ।

इन सबके अतिरिक्त, इसी युग मे हिन्दी भाषा और साहित्य के आधुनिक युग का प्रारम्भ हुआ। लोक भाषा और लोक साहित्य के रूप मे उसकी स्वतन्त्र सत्ता को प्रतिष्ठित करने के प्रयत्न चालू हुए। आधुनिक खडी बोली की नवीन गद्य पद्य शैलियो का सूत्रपात हुआ। हिन्दी के पुस्तक प्रकाशन और सामयिक

एशियाटिक सोसाइटी तथा थियोसीफिकल सोसाइटी के भी सदस्य थे। कई देशीय भाषाओ पर इनका अधिकार था किन्तु हिन्दी के ये बडे प्रेमी थे और नागरी के प्रचार मे सदैव प्रयत्नशील रहते थे। आपने हिन्दी के कई समाचार-पत्र निकाले जिनमे सर्वप्रसिद्ध 'समालोचक' था जिसे आपने बडे परिश्रम और अर्थ व्यय से चार वर्ष तक निकाला। इस पत्र मे बडे मार्के के लेख निकलते थे। इसके कारण हिन्दी ससार मे आपकी बडी ख्याति हुई। नागरी प्रचारिणी सभा के बडे सहायक थे और जयपुर मे एक 'नागरी भवन' नामक श्रेष्ठ पुस्तकालय स्थापित किया। कमल मोहिनी भँवरसिह नाटक, व्याख्यान प्रबोधक और ज्ञान वर्णमाला, ये तीन पुस्तक उन्होने स्वय लिखी थी तथा 'संस्कृत कवि पचक' आदि हिन्दी के कई अच्छे ग्रथ इन्होने अपने ही खर्च से प्रकाशन कराये थे।

इस प्रकार, जैन साहित्य प्रकाशन के इस प्रथम युग मे भी जैन समाज ने सर्वतोमुखी योग दान किया।

२. प्रगति युग (सन् १९००—१९२५ ई०)—पच्चीस वर्ष का यह काल जैन प्रकाशन का प्रगति युग कहा जा सकता है। इस युग मे अन्य मतो के खडन मंडन का कार्य, जैसा कि ऊपर सकेत किया जा चुका है, सीमित, सकुचित एवं शिथिल होता चला गया। तथापि, उसी के कारण जो कितने ही जैन अनेक सनातनी हिन्दुओ की भाँति, स्वधर्म की वास्तविकता से अनभिज्ञ होने के कारण धर्म त्याग करते चले जा रहे थे उस मे भारी रोक थाम हो गई। प्रत्युत कुँवर दिग्विजयसिह, बाबा भागीरथ जी वर्णी, प० गणेश प्रसाद जी, मु० कृष्ण लाल वर्मा, महर्षि शिवव्रत लाल वर्मन, प्रो० धर्मचन्द्र, स्वामी कर्मानन्द जी आदि अनेक कट्टर जैन विरोधी जैनेतर विद्वान भी जैन धर्म के परम भक्त और उत्कट प्रचारक हो गये।

अब समाजगत मोटी मोटी कुरीतियो की ओर सकेत मात्र करना पर्याप्त नही रह गया। सामाजिक सगठन को दृढ़ करने और विवाह संस्था सम्बन्धी विभिन्न धार्मिक सामाजिक प्रश्नो की विशद मीमासा करने की आवश्यकता

हुई । बाल विवाह वृद्ध विवाह बहु विवाह आदि का विरोध अन्तर्जातीय विवाह और विधवा विवाह का समर्थन, विवाह आदि मे फिजूल खर्ची पर प्रतिबन्ध, वेश्या नृत्य, भडवे, नक्कालो आदि का नाच गाना और कन्या विक्रय की बन्दी, दहेज मे कमी, जैनविधि से सस्कारो का किया जाना, आदि सुधारो का प्रचार किया जाने लगा। स्त्री शिक्षा, दस्सा पूजाधिकार तथा शुद्धि आन्दोलन उठाये गये देवबन्द के एक जैनी वकील जो मुसलमान हो गये थे उन्हें बा० सूरजभान जी और उनके साथियो ने तीव्र विरोध की उपेक्षा करके फिर से जैनी बनाया और समाज मे शामिल किया। दस्सो के पूजाधिकार को लेकर मेरठ मे एक युगान्तरकारी मुकद्दमे बाजी भी हुई जिसमें प० गोपाल दास जी बरैया ने भी दस्सा पूजाधिकार का ही समर्थन किया। श्राविकाश्रम, विधवा-श्रम, अनाथालय, गुरुकुल, छात्रालय आदि खोले गये। और अखिल भारतीय जैन समाज के विभिन्न उपसम्प्रदायो के बीच सद्भाव एव सामञ्जस्य स्थापित करने के प्रयत्न चालू हुए। किन्तु साथ ही तीर्थों को लेकर उभय सम्प्रदायो के मध्य मुकद्दमेबाजी भी खूब चल निकली। इन कार्यों मे भी प्राय बा० सूरजभान जी ही अग्रणी थे, उनके कई एक साथियो ने अपनी शुद्ध साहित्यिक अभिरुचि के कारण प्रचार कार्य मे धीरे धीरे उनका साथ छोड दिया, किन्तु उनके स्थान मे उन्हे कितने ही अन्य उत्साही साथी प्राप्त होते गये, और उपरोक्त विषयों एव समस्याओं पर भी पर्याप्त साहित्य प्रकाशित हुआ।

समाज सुधार के अतिरिक्त इस युग की दूसरी प्रवृति धर्म प्रचार थी। आर्य समाज के बढते हुए प्रचार से प्रभावित होकर जैन नेताओ ने भी बाह्य जनता मे स्वधर्म प्रचार करना आरम्भ किया। इस कार्य का श्रीगणेश वस्तुत. पजाबी स्थानकवासी (बाद को श्वेताम्बर मन्दिर मार्गी) साधु स्वामी आत्मा-राम जी ने किया था। उन्होने अन्य जैन नेताओ के साथ साथ आर्य समाज के विरोध का दृढता से मुकाबला किया, जैनियों का स्थितिकरण किया और कई एक अजैनों को भी जैन बनाया। उन्होंने स्वय कई पुस्तकें लिखी तथा उनकी स्मृति मे स्थापित आत्माराम जैन ट्रैक्ट सोसाइटी अम्बाला से अनेक उपयोगी

ट्रैक्ट प्रचारार्थ प्रकाशित हुए। जिस प्रकार स्वामी रामकृष्ण परमहंस के प्रतिभाशाली शिष्य स्वामी विवेकानन्द अमेरिका आदि देशो मे हिन्दू धर्म का प्रचार करने के लिये गये थे, उसी प्रकार और लगभग उसी समय स्वामी आत्माराम के सुयोग्य शिष्य स्व० वीरचन्द राघव जी गाधी भी स्वगुरु की प्रेरणा से यूरोप अमेरिका आदि मे जैन धर्म के प्रचारार्थ गये और उन्होंने शिकागो के सर्व धर्म सम्मेलन मे भी महत्त्व पूर्ण भाग लिया। उनके पश्चात् स्व० बैरिस्टर, जगमन्दर लाल जैनी, चीफ जज इन्दौर ने तो यूरोप मे जैन धर्म प्रचार को अपने जीवन का व्रत ही बना लिया था। उन्होंने कई बार विदेश यात्रा की और इग्लैंड मे तो वे पर्याप्त समय तक रहे भी। कितने ही अंगरेजो को उन्होंने जैनी बनाया जिनमे श्री हर्बर्ट वारेन, जे० गौर्डन उनकी पत्नी आदि उल्लेखनीय हैं। इन जे० एल० जैनी ने ही लन्दन मे 'ऋषभ जैन फ्री लैंन्डिग लायब्रेरी' नामक पुस्तकालय तथा जैन केन्द्र की स्थापना की, जैन धर्म पर अंग्रेजी मे स्वयं कई स्वतन्त्र पुस्तकें लिखी तथा तत्त्वार्थ सूत्रादि प्राचीन ग्रन्थो के अनुवादादि तैयार करके प्रकाशित कराये, वर्षो पर्यन्त अंगरेजी जैन गज़ट का योग्यता के साथ सुसम्पादन किया, और मृत्यु के समय अपनी समस्त सम्पत्ति का इन्ही उद्देश्यो मे उपयोग किये जाने के लिये एक ट्रस्ट कर गये। उन्ही की भाँति स्व० बैरिस्टर चम्पतराय जी ने भी विदेशो में जैन धर्म प्रचार को ही अपना लक्ष्य बनाया, इसी उद्देश्य से अनेक बार यूरोप और अमेरिका की यात्रा की और कितने ही यूरपियन स्त्री पुरुषो को जैन धर्म मे दीक्षित किया। जैन धर्म पर अंगरेजी मे जो स्वतन्त्र पुस्तकें लिखी गई उनमे बैरिस्टर साहब की कृतिये ही सर्वाधिक हैं। इन्होने अपने पिता की स्मृति मे देहली मे 'सोहन लाल बाँकेराय जैन एकेडेमी' की स्थापना की और अपनी समस्त सम्पत्ति को विदेशो मे जैन धर्म का प्रचार करने के लिये दान कर दिया। बाडीलाल मोतीलाल शाह, ऋषभदास वकील, पारसदास खजानची, रा० ब० लठ्ठे, पूर्णचन्द्र नाहर, मुन्शी लाल एम० ए०, डा० बनारसी दास, बा० अजित प्रसाद ब्र० शीतल प्रसाद आदि सज्जनों ने भी अंगरेजी पत्र पत्रिकाओ मे प्रकाशित

निबन्धो तथा स्वतन्त्र पुस्तको के रूप मे अंगरेजी जैन साहित्य का निर्माण किया।

जे० एल० जैनी, पं० अर्जुनलाल सेठी, महात्मा भगवान दीन, मा० चेतनदास, बा० अजित प्रसाद आदि महानुभावो की जो भारत जैन महामडल को लेकर एक सुदृढ टीम बन गई थी उसके वास्तविक प्राण थे। आरा निवासी कुमार देवेन्द्र प्रसाद, ये महा उद्यमी, निस्वार्थ एव सच्चे 'स्वय सेवक' थे और हिन्दी के भी सुलेखक थे। स्याद्वाद विद्यालय काशी के सन् १९१४ के वार्षिकोत्सव जैसे कई महत्त्व पूर्ण आयोजन इन्होंने किये जिनमे उच्च कोटि के संसार प्रसिद्ध देशी विदेशी अजैन विद्वानों यथा डा० हर्मन जेकोवी डा० वान ग्लेजनेप, प्रो० जे हर्टल, डा० एनी वेसेन्ट, म० म० डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषण, डा० टी० के लड्डू, म० म० प्रो० राममिश्र, महर्षि शिवव्रत लाल वर्मन इत्यादि को निमन्त्रित करके जैन धर्म पर उनके महत्त्व पूर्ण ऐतिहासिक भाषण कराये और जैन साहित्य एव कला की प्रदर्शनियें की। इन आयोजनो के परिणाम स्वरूप जैनधर्म के विषय मे कम से कम जैनेतर विद्वत्समाज की अभिज्ञता तो बहुत बढ गई, उनके अनेक भ्रम दूर हो गये और यह धर्म तथा इसकी सस्कृति सम्मान पूर्ण अध्ययन की वस्तु समझे जाने लगे। कुमार देवेन्द्र प्रसाद जी के ही प्रयत्नों से 'सेन्ट्रल जैन पब्लिशिंग हाउस, की स्थापना हुई और उससे 'सेक्रेड बुक्स आफ दी जेन्स' सीरीज का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ जिसमें कि पंचास्तिकाय, समय सार, तत्त्वार्थ सूत्र, द्रव्य सग्रह, गोमट्टसार, परमात्म प्रकाश, नियमसार आदि कितने ही प्राचीन दिगम्बर जैन आर्ष ग्रन्थो के अंगरेजी अनुवादादि सहित उच्चकोटि के जैनाजैन विद्वानो द्वारा सुसम्पादित सस्करण प्रकाश में आये। मडल का मुख पत्र अंगरेजी जैन गजट भी बडे उपयोगी एवं आकर्षक रूप मे निकलता रहा। मद्रासी, दक्षिणी, बंगाली, पजाबी-विभिन्न प्रान्तीय अनेक जैनाजैन विद्वानों ने इन कार्यों मे महत्त्व पूर्ण योग दान दिया।

इसी युग मे जैन धर्म के सच्चे मिशनरी और त्यागी सेवक स्वर्गीय ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद जी थे। वे धर्म प्रचार और समाजोन्नति के लिये तडपते हुए हृदय को लिये हुए देश के कोने कोने में—बर्मा, स्याम और लङ्का तक गये और स्थान स्थान में सार्वजनिक सभाएं कराकर जैन धर्म की और सर्वसाधा-

रण को आकृष्ट किया। जैन मित्र आदि कई पत्रों का योग्यता पूर्वक सम्पादन किया तथा अनेक व्यक्तियो को प्रोत्साहन दे देकर अच्छा खासा लेखक बना दिया। स्वय अकेले उन्होंने सर्व प्रकार की, मौलिक, टीका अनुवादादि, सकलन सग्रह, फुट कर लेख निबन्ध, धार्मिक, ऐतिहासिक, शिक्षा एव समाज सुधार विषयक छोटी बडी रचनाएँ संख्या एव मात्रा मे निर्माण की और छपा कर प्रकाशित करदी उतनी शायद छापे के आरम्भ से आज पर्यन्त कोई दूसरा व्यक्ति नहीं कर पाया। ब्रह्मचारी जी के जीवन का प्रत्येक क्षण जैन धर्म और साहित्य के प्रकाशन प्रचार मे ही व्यीतत हुआ। रेल मे यात्रा करते हुए तथा रोग की दशा मे भी वे लिखते रहते थे। विधवा विवाह के प्रचार के लिये उन्होने 'सनातन जैन समाज' तथा 'सनातन जैन' पत्र की स्थापना की। मध्य काल के एक जैन सन्त तारण स्वामी द्वारा प्रस्थापित तारण समाज और उसके पुरातन साहित्य को प्रकाश मे लाने का श्रेय भी ब्रह्मचारी जी को ही है। साथ ही वे उत्कट देश भक्त भी थे और कांग्रेस के प्राय सब ही अधिवेशनो मे सम्मिलित हुए। जैन समाज मे वे निरन्तर देशभक्ति की भावना को फूकते रहते थे।

तत्कालीन नेताओ ने शिक्षा प्रचार की ओर भी विशेष ध्यान दिया। बाल और कन्या पाठशालाएं तो स्थान स्थान मे खुलनी प्रारभ हो गई थी अब बड़े-बडे जैन सस्कृत विद्यालय भी खुलने लगे। बनारस, इन्दौर, सहारनपुर, कारजा, सागर, मुरैना, मथुरा आदि स्थानो मे ये विद्यालय स्थापित किये गये। प० गोपाल दास जी बरैया की कृपा से जैन सिद्धांत एव दर्शन के परिज्ञाता सस्कृतज्ञ युवक विद्वानों का एक अच्छा दल तैयार हो गया था। अतएव उन विद्यालयो के लिये योग्य अध्यापकों की कमी न रही। समाज के श्रीमानो और सेठो ने द्रव्य से सहायता की। इन विद्यालयो मे जैन दर्शन, न्याय, सिद्धात, साहित्य आदि के अतिरिक्त कलकत्ता विश्वविद्यालय तथा क्वीन्स सस्कृत कालिज बनारस की परिक्षाओ के लिए भी विद्यार्थी तैयार किये जाने लगे। दि० जैन महासभा ने जैनशास्त्री आदि परिक्षाओं के निमित्त अपना एक परीक्षा

बोर्ड स्थापित किया और उत्कट शिक्षा प्रेमी सेठ माणिक चद्र बम्बई वालो ने भी एक 'माणिक चद्र' दि० जैन परीक्षा बोर्ड स्थापित किया। उक्त विद्यालयो मे अध्ययन करके सैकडो विद्यार्थी प्रतिवर्ष इन परीक्षा बोर्डों की परिक्षायें पास करने लगे। परीक्षा बोर्डों द्वारा निर्धारित पाठ्य क्रमो के लिए उपयुक्त पाठ्य पुस्तको की आवश्यकता हुई जिसकी पूर्ति के प्रयत्न से भी जैन पुस्तक प्रकाशन को अच्छी प्रगति मिली। जैन बाल पाठशालाओ मे धार्मिक शिक्षा देने की ओर विशेष ध्यान रक्खा गया और उसके लिये बाल बोध जैन धर्म जैसी अनेक छोटी २ बालकोपयोगी पुस्तको का निर्माण हुआ।

किन्तु नित्य प्रति वृद्धि को प्राप्त होता हुआ आधुनिक अ ग्रेजी प्रणाली से शिक्षित समुदाय इन बाल पाठशालाओ और सस्कृत विद्यालयो से ही सन्तुष्ट न रह सका, उसकी दृष्टि में जैन बोर्डि ग हाउस, स्कूलो और कालिजो का उपयुक्त केन्द्रों में स्थापित किया जाना समय की परम आवश्यकता थी। सेठ माणिक चन्द्र ने तो स्थान स्थान मे जाकर जैन छात्रालय स्थापित कराने का बीड़ा ही उठा लिया था। अनेक स्थानो मे जैन हाई स्कूल खुले और दो-एक जैन कालिज भी स्थापित हुए। कुछ एक महाप्राण जैन नेताओ की यह भी उत्कट अभिलाषा थी कि एक जैन विश्व विद्यालय स्थापित हो जाय। इसके लिए प० गणेश प्रसाद जी, प० दीप चन्द्र जी और बाबा भागीरथ जी ये यशोंमय प्रयत्न शील भी हुए, किन्तु समाज के श्रीमानो की ओर से कोई सहयोग न मिलने के कारण असफल रहे और आजतक भी जैन विश्व विद्यालय की स्थापना न हो पाई। इसी समय कुछ नेताओं का यह विचार हुआ कि पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली किन्ही अ शो में उपयोगी होते हुए भी सांस्कृतिक नैतिक एवं राष्ट्रीय दृष्टि से अति दोष पूर्ण एव हानिकर है, अतएव ऐसे गुरुकुल स्थापित किये जाय जिनमे भारतीय एव पश्चिमी शिक्षा प्रणालियो का समन्वय करते हुए नवीन सन्तति को धार्मिक, चारित्रवान, देश भक्त एव सुशिक्षित बनाया जा सके। फल स्वरूप सन् १६११ मे बा० सूरजभान जी के प्रयत्न और देश भक्त महात्मा भगवान दीन जी के अधिष्ठातृत्व मे हस्तिनागपुर

(मेरठ) की प्राचीन पवित्र भूमि पर श्री ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम नामक प्रथम जैन गुरुकुल की स्थापना हुई। प्रारभ मे इस सस्था को देश भर के श्रीमानों, विद्वानों एव समाज सेवियो की सहायता और स्नेह प्राप्त हुआ, किन्तु प्रबन्धको मे शीघ्र ही मतभेद हो जाने के कारण वह अपने मूल स्थान, मौलिक रूप एव उच्च आदर्शों पर तीन चार वर्ष से अधिक स्थिर न रह सका, वैसे दि० जैन सघ के प्रबन्ध मे मथुरा मे वह अभी तक विद्यमान है। उपरोक्त जैन छात्रावासो, स्कूलो, कालिजो के विद्यार्थियो को धार्मिक शिक्षा देने के लिए भी साहित्य प्रकाशित हुआ। तत्त्वार्थसूत्र, रत्न करड श्रावका चार, पुरुषार्थ सिद्धयुपाय, द्रव्य सग्रह, छहढाला आदि प्राचीन मौलिक ग्रन्थो के शब्दार्थ भावार्थ टिप्पणि आदि सहित विद्यार्थियोपयोगी सक्षिप्त सस्करण निकले।

जैन स्त्री समाज मे शिक्षा प्रचार का व्यवस्थित कार्य महिलारत्न स्व० मगनबेन, पडिता ललिता बाई व पडिता चन्दा बाई जी आदि विदुषियो ने अपने हाथ मे लिया। बम्बई और आरा मे आदर्श जैन बाला विश्राम स्थापित हुए, जैन महिला परिषद बनी और महिलाओ द्वारा ही सुसम्पादित, सञ्चालित 'जैन महिलादर्श' नामक मासिक पत्रिका चालू हुई।

इस युग मे व्यवसायिक दोनो ही प्रकार के कई एक प्रकाशको का अविर्भाव हुआ। हिंदी के कई मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक तथा मराठी, गुजराती, कन्नडी, अग्रेजी और उर्दू के भी कई अच्छे जैन सामयिक पत्र निकलने लगे। माणिकचन्द्र दि० जैन ग्रन्थ माला, मुनि अनन्तकीर्ति दि० जैन ग्रन्थ माला, रायचन्द्र जैन शास्त्रमाला सनातन जैन ग्रथ माला आदि कई एक उच्च कोटि की अव्यवसायिक ग्रथ मालाएँ चालू हुई। इनके द्वारा प्राचीन जैन ग्रथ मूल रूप मे ही सुसम्पादित होकर अथवा टीका अनुवादादि सहित प्रकाशित होने लगे और प्राय. सर्व ही महत्त्वपूर्ण एव उपलब्ध ग्रथ जैसे तैसे प्रकाश मे आ गये। प० जुगलकिशोर मुख्तार, प० नाथूराम प्रेमी आदि कई योग्य विद्वान इस नव प्रकाशित प्राचीन साहित्य के साहित्यक एव ऐतिहासिक दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन मे जुट गये। फलस्वरूप अनेक ग्रथो की समीक्षा परीक्षाएँ प्रकाशित

हुई। इस प्रकार के विश्लेषण से नाम साम्य के कारण विभिन्न आचार्यों की रचनाओं को उसी नाम के किसी एक ही प्रसिद्ध आचार्य की कृति समझ लेना जैसी सर्व प्रचलित भ्रान्तियों का निराकरण हुआ। अनेक आचार्यों के समय, इतिवृत्त एवं कार्य कलापों पर प्रकाश पड़ा, विशेष सैद्धान्तिक विषयों पर विभिन्न आचार्यों की विभिन्न मान्यतायें रही है, ऐसी बातें भी प्रकाश में आईं। विशेष रूप से 'जैनहितैषी' मासिक ने इन प्रवृत्तियों में पर्याप्त एवं सफल दान दिया। और इस प्रकार सुव्यवस्थित जैनाध्ययन का बीजारोपण हुआ तथा जैन धार्मिक एवं साहित्यिक इतिहास की सामग्री, फुटकर एवं असम्बद्ध रूप में ही नहीं, शनैः शनैः एकत्रित होने लगी।

संस्थाओं का भी प्रसार हुआ। दि० जैन महासभा की बम्बई आदि प्रान्तों में शाखाएँ खुलीं। भारतवर्षीय दि० जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी तथा प्रान्तीय और स्थानीय तीर्थ क्षेत्र कमेटियों की स्थापना हुई। भारत जैन महामण्डल, जैन पोलिटिकल कान्फ्रेंस, दि० जैन शास्त्रार्थ संघ अम्बाला, जीव दया प्रचारिणी सभा आगरा, जैन मित्र मण्डल देहली, भारत वर्षीय दि० जैन अनाथ रक्षक सोसाइटी देहली, और अन्त में महासभा की नीति से मतभेद होने के कारण उसके कतिपय सदस्यों द्वारा सन् १९२३ में अखिल भारत वर्षीय दि० जैन परिषद, इत्यादि संस्थाओं की स्थापना हुई। इन सभी संस्थाओं ने अपने२ कार्य क्षेत्र में प्रचुर साहित्य के निर्माण और प्रकाशन में पर्याप्त सहयोग दिया।

जहाँ तक हिन्दी की सामान्य उन्नति का प्रश्न है जैनों ने उस में भी स्तुत्य योग दान किया। हिन्दी के तत्कालीन सार्वजनिक पत्रों में सि० जैन वैद्य का सुप्रसिद्ध 'समालोचक', देहली के सेठ माहूलाल का साप्ताहिक 'हिन्दी समाचार', देहरादून के ला० [illegible] का 'भारत हितैषी' इन्दौर के बा० गुरु सम्पत्तिराय भंडारी के 'मल्हारि मार्तण्ड विजय' पत्र और बम्बई से प० पन्नालाल बाकलीवाल का 'हिन्दी हितैषी' श्रेष्ठ कोटि के पत्र थे। बम्बई हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय और हिन्दी गौरव ग्रन्थ माला के स्वामी व संचालक जैनी थे। [illegible] की राजपूताना हिन्दी साहित्य समिति का लगभग [illegible] हजार रुपये

का स्थायी फंड श्री वाडीलाल मोतीलाल शाह के उद्योग से केवल जैनो द्वारा प्रदत्त था और इससे हिन्दी के उत्तमोत्तम ग्रन्थ केवल लागत मूल्य से बेंचे जाने की योजना थी। इन्दौर की मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति को भी जैनों से कई हजार रुपया प्राप्त हुआ था। खण्डवे की हिन्दी ग्रन्थ प्रसारक मण्डली के उत्साही सचालक एक बा मारिणकचन्द्र जैनी वकील थे और आरा की नागरी प्रचारिणी सभा के प्राण बा. जैनेन्द्र किशोर थे, इत्यादि। हिन्दी जैन साहित्य के प्रकाशन मे वम्बई के जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय तथा रामचन्द्र जैन शास्त्रमाला ने प्रमुख भाग लिया। धार्मिक से अतिरिक्त विषयो पर लिखने वाले लगभग दो दर्जन जैन सुलेखक विद्यमान थे और उनकी सख्या मे निरन्तर वृद्धि हो रही थी।

इस प्रकार इस युग मे निम्नोक्त विविध प्रकार का साहित्य प्रकाश मे आया—

(१) प्राचीन संस्कृत प्राकृत ग्रन्थों के सम्पादित सस्करण.— मूल मात्र अथवा टीका अनुवादादि सहित। उल्लेखनीय सम्पादक अनुवादक टीकाकार आदि—बा० सूरजभान, प० पन्नालाल बाकलीवाल, प० पन्नालाल सोनी, उदयलाल काशलीवाल, पं० वशीधर शास्त्री, प० खूबचन्द शास्त्री, प० लालाराम शास्त्री, प० मनोहर लाल, प० गजाधर लाल, जे. एल. जैनी, बा० ऋषभदास वकील, ला. मुन्शी लाल, मुनि माणिक जी, प्रो. ए सी चक्रवर्ती, ब्र. शीतल प्रसाद, शरच्चन्द्र घोषाल, प० नाथूराम प्रेमी इत्यादि। पुरातन हिंदी जैन साहित्य को प्रकाश मे लाने का अधिकतर श्रेय बाकली वाल जी और प्रेमी जी को है। प्रेमी जी ने तो हिन्दी साहित्य सम्मेलन के जवलपुर मे होने वाले सप्तम अधिवेशन मे 'हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास' शीर्षक एक विस्तृत निवन्ध भी पढा था जो जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय वम्बई से सन् १९१७ मे पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ।

(२) प्राचीन ग्रन्थों की समीक्षा परीक्षा:—साहित्यक, सैद्धान्तिक एवं ऐतिहासिक विश्लेषण सम्बन्धी साहित्य। उल्लेखनीय लेखक—पं० जुगल-किशोर मुख्तार, बा० सूरजभान वकील, प० नाथूराम प्रमी।

(३) जैन इतिहास सम्बन्धी स्वतन्त्र पुस्तकें तथा ऐतिहासिक सामग्री के संकलन ग्रन्थ यथा विज्ञप्ति संग्रह, प्रशस्ति संग्रह, शिला-लेख संग्रह आदि—उल्लेखनीय लेखक—डा. ए. गिरनाट, रा. ब. पारसदास, पूर्णचन्द्र नाहर, मुनि जिन विजय जी, उमराव सिंह टांक, पद्मराज रानीवाले, पं. नाथूराम प्रेमी, ब्र. शीतलप्रसाद, डा. बनारसीदास, बिहारीलाल चैतन्य, प्रभुदयाल तहसीलदार, बा. सूरजमल, प्रो. आयंगर, प्रो. शेषागिरि राव, रा. ब. नरसिंहाचार आदि।

(४) जैन धर्म और उसके अहिंसा आदि सिद्धान्तों तथा उपदेश को आधुनिक भाषा और शैली में स्वतन्त्र रूप से प्रस्तुत करने वाली पुस्तकें—उल्लेखनीय लेखक—पं. गोपालदास बरैया (मुरैना विद्यालय तथा जैन मित्र पत्र के संस्थापक और प्रथम सम्पादक) बा. ऋषभदास वकील (मेरठ), जे. एल. जैनी, वी लट्ठे, पूर्णचन्द नाहर, ब्र. शीतल प्रसाद, चम्पतराय बैरिस्टर, बा. सूरजभान वकील, पं. पन्नालाल बाकलीवाल, ला. मुन्शीलाल, बा. माणिक चन्द, पं. दरयाव सिंह सोधिया, मुनि शान्ति विजय, पं. जुगल-किशोर मुख्तार आदि।

(५) समाज सुधार एवं शिक्षा प्रचार सम्बन्धी पुस्तकें—उल्लेखनीय लेखक बा. सूरजभान, पं. जुगल किशोर, ज्योतिप्रसाद प्रेमी, दयाचन्द गोयलीय, पं. पन्नालाल बाकलीवाल, आदि।

(६) पाठ्य पुस्तकें—उल्लेखनीय लेखक—पं. पन्नालाल बाकलीवाल, बा. दयाचन्द गोयलीय, ब्र. शीतल प्रसाद, पं. गोपालदास बरैया, लाला मुन्शी-लाल आदि।

(७) उपन्यास नाटक कहानी आदि—उल्लेखनीय लेखक—पं. गोपाल दास बरैया (सुशीला उपन्यास), बा. सूरजभान, पं. अर्जुनलाल सेठी, ला. मुन्शी-लाल, बा. माणिक चन्द, बा. कन्हैयालाल, ला. न्यामतसिंह हिसार (इनके नाटकों और भजनों की बड़ी धूम रही), बा. कृष्णलाल वर्मा, पं. नाथूराम प्रेमी आदि।

(८) हिन्दी के सार्वजनिक पत्रों मे फुटकर लेख तथा स्वतंत्र अनूदित सामयिक लेख निबन्ध चरित्र आदि—उल्लेखनीय लेखक–मि० जैन वैद्य, ला० मुन्शीलाल, बा० दयाचन्द्र गोयलीय, वाडीलाल मोतीलाल शाह, बा० सुपार्श्वदास गुप्त (इनका पार्लमेंट नामक ग्रन्थ ४०० पृष्ठ का था), बा० मोतीलाल, डा० वेणीप्रसाद, बा० मणिकचन्द्र, खूबचन्द सोधिया, डा० निहालकरण सेठी, बालचन्द्राचार्य, सुखसम्पत्ति राय भडारी, प० नाथूराम प्रेमी, आदि।

(९) इस युग की स्फुट तथा फुटकर रचनाओ मे जुगलकिशोर मुख्तार, नाथूराम प्रेमी, ज्योति प्रसाद प्रेमी आदि की हिन्दी कविताए, मु० द्वारका प्रसाद के तीर्थ यात्रा विवरण, ब्र० शीतल प्रसाद व बैरिस्टर चम्पतराय के अन्य धर्मों के साथ जैन धर्म के तुलनात्मक अध्ययन, इत्यादि।

(१०) दरखशा, माईल, पैकाँ, ऋषभदास, सूरजभान, ज्योतिप्रसाद मामचन्दराय, सुमेरचन्द्र, ओसवाल, शिवव्रतलाल, नत्थूराम, चन्दूलाल अख्तर, आदि की उर्दू जैन रचनाए उल्लेखनीय हैं। अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं मे जैन साहित्य अथवा जैन सम्बन्धी साहित्योल्लेखो का विवरण रा० ब० पारसदास व बा० छोटेलाल की बिबलियोग्रेफियो और जैन गजट (अंग्रेजी) की फाईलो से प्राप्त हो सकता हैं।

इस युग के जैन साहित्य प्रकाशन मे विशेष योग देनेवाली सस्थाए, प्रकाशक तथा व्यक्ति निम्नलिखित हैं—बम्बई की माणिकचन्द्र दि० जै० ग्रन्थमाला, मुनि अनन्तकीर्ति दि० जैन ग्रन्थमाला, जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय, जैन मित्र कार्यालय, कलकत्ते की सनातन जैन ग्रन्थमाला, जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी सस्था, जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, और सेन्ट्रल जैन पब्लिशिंग हाउस आरा (अब लखनऊ), जैन तत्व प्रकाशिनी सभा इटावा, जैनेन्द्र प्रेस कोल्हापुर, दि० जैन पुस्तकालय सूरत, जैन मित्र मडल देहली, हीरालाल पन्नालाल जैन बुक सेलर्स देहली, दि० जैन शास्त्रार्थ सघ अम्बाला, आत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसाइटी अम्बाला,

जैनीलाल जैनी देवबन्द, ज्ञानचन्द्र जैनी लाहौर, न्यामत सिंह जैनी हिसार, ला० जौहरीमल सर्राफ देहली (विशेष रूप से उत्कट समाज सुधार विषय के साहित्य के लिये), सेठ हीराचन्द व सखाराम नेमचन्द दोशी शोलापुर, सेठ गांधी नाथारंग आकलूज, गोपाल अम्बादास चवरे कारंजा—इन तीनों श्रीमानों ने प्राचीन ग्रन्थों के प्रकाशन में भारी हिस्सा लिया। इनके अतिरिक्त जयपुर निवासी बा० दुलीचन्द श्रावक, मुं० अमनसिंह, मु० सुमेरचन्द, बैरि० चम्पतराय, कुमार देवेन्द्रप्रसाद, ला० देवीसहाय (फीरोजपुर) उम्मेदसिंह मुसद्दीलाल (अमृतसर) बुद्धिलाल श्रावक, मुं० नाथूराम लमेचू आदि उल्लेखनीय हैं। मद्रास से सी० मल्लिनाथ, प्रो० चक्रवर्ती आदि सज्जनों ने जैन साहित्य प्रकाशन का कार्य किया।

३. वर्तमान युग :—सन् १९२५ के उपरान्त जैन साहित्य प्रकाशन के वर्तमान युग का प्रारम्भ होता है।

अब विभिन्न मतों के द्वारा धार्मिक दृष्टि से किये जानेवाले विद्वेषपूर्ण खण्डन मण्डनों का समय नहीं रह गया था। आर्य जैन द्वन्द्व प्राय समाप्त हो गया था। किसी भी धर्म के मन्तव्यों एवं मान्यताओं का मखौल उड़ाने, उसे तुच्छ, नीचा, नास्तिक या मिथ्या सिद्ध करने के प्रयत्न निन्दनीय समझे जाने लगे और सर्वधर्म समभाव स्थापित करने की चेष्टाएं की जाने लगीं। किन्तु साथ ही एक नवीन प्रवृत्ति भी दृष्टिगोचर होने लगी। अनेक जैनेतर विद्वान अपनी साहित्यिक, दार्शनिक एवं ऐतिहासिक रचनाओं में जैन धर्म दर्शन, संस्कृति, आदि की प्राचीनता, उपादान और मूल्यवान देनों की अज्ञान अथवा प्रमाद के वश होकर उपेक्षा तथा उनके सम्बन्ध में भ्रमपूर्ण एवं मिथ्या कथन भी करने लगे। फलस्वरूप उन विद्वानों के साथ भी अन्याय होता ही है, साथ ही जैन धर्मावलम्बियों के स्वाभिमान को भी ठेस पहुंचती है और उन्हें क्षोभ होता है। स्वातंत्र्य प्राप्ति और सर्वतंत्र स्वतन्त्र की स्थापना के उपरान्त बहुसंख्यक हिन्दू धर्मानुयायियों के द्वारा जिनका कि राजनैतिक आदि क्षेत्रों में प्राधान्य है, यह प्रवृत्ति और अधिक चरितार्थ

अध्ययनीय विषय बनाकर उसके सम्बंध में सुव्यवस्थित शोध खोज अनुसंधानादि चालू किये कराये जांय।

अजैन लेखकों की उपरोक्त प्रकार की भ्रान्त धारणाओं और मिथ्या या अन्यथा कथनों के परिहार एवं निराकरण के उद्देश्य से भी बहुत कुछ साहित्य प्रकाशित होने लगा है, किन्तु इस आवश्यकता की पूर्ति जैसे सुचारु सुव्यवस्थित ढंग पर होनी चाहिये थी वैसी अभी नहीं हो पारही है।

जैन धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों के बीच समन्वय तथा ऐक्य के जो प्रयत्न पिछले युग मे प्रारंभ हुए थे वे इस युग मे शिथिल प्राय: होते गये। और जिस प्रकार भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के प्रयत्नों का परिणाम अतिकटु एवं विनाशकारी सिद्ध हुआ उसी प्रकार दिगम्बर श्वेताम्बर सम्प्रदायों मे सद्भाव एव एक-सूत्रीकरण के प्रयत्न भी उभय सम्प्रदायों के बीच की खाई को और अधिक विस्तृत एवं गहरी करते दीख पड रहे हैं। विभिन्न तीर्थों के प्रश्न को लेकर होने वाली चिरकालीन मुकदमेबाजी के अतिरिक्त नवीन साहित्यिक शोध खोज का लाभ उठा कर दोनों ओर के कितने ही विद्वान प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उभय सम्प्रदायों के साहित्यिक सैद्धान्तिक ऐतिहासिक आदि मतभेदों को और अधिक सूक्ष्मता के साथ पुष्ट करने लगे हैं। जो इने गिने नेता इतने पर भी समन्वय के प्रयत्न में लगे हुए हैं वे भी कुछ ऐसा भ्रमपूर्ण ढंग अख्त्यार किये हुए हैं कि जिससे वे सद्भाव उत्पन्न करने के बजाय शंका और द्वेष की पुष्टि करने मे ही सफल हो रहे हैं। तथापि ऐसे उदाराशय विद्वानों का भी अब अभाव नहीं है जो कि अपनी दृष्टि की विशालता के कारण अनेकान्त मूलक सहिष्णुता के साथ सभी मतभेदों को गौण करते हैं तथा एक उपरिम समस्तर से ही विचार करते है। इस दिशा मे ऐसे ही महानुभावों से कुछ आशा है।

सामाजिक संगठन की दृष्टि से भी जैन समाज कुछ आगे नहीं बढ़ा। पिछले युग के नेता संख्या में तो थोड़े थे किन्तु प्राय: सर्व ही सामाजिक क्षेत्रों पर उनका अधिकार था, उनमें परस्पर सहयोग और एक सूत्रता थी, वे अपना

बहुमूल्य समय देकर अनेक कष्ट लाञ्छना अपमानादि सहन कर, अपनी जेब से ही आवश्यक द्रव्य भी व्यय करके पूरी लगन और तत्परता के साथ समाजोन्नति के विविध कार्यक्रमो मे जुटे रहते थे। सस्थाए भी थोडी थी पर वे ऐसे कर्मठ, निस्वार्थ एव कर्त्तव्य शील नेताओ की अध्यक्षता मे बहुत कुछ ठोस कार्य कर रही थी। किन्तु अब आये दिन नई-नई सस्थाओ का जन्म होने लगा, उन्हे व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति का साधन बनाया जाने लगा, छोटी-छोटी व्यापारिक कम्पनियो जैसी उनकी स्थिति हो गई। उनके नेताओ और कार्यकर्ताओ मे या तो पद और मान के लोलुपी अदीमुल फुर्सत बडे-बड़े श्रीमान होने लगे या फिर वैतनिक अथवा नाम मात्र के लिए अवैतनिक ऐसे व्यक्ति होने लगे जो प्रायः करके न स्वल्प सतोषी ही होते है और न जीवन निर्वाह सम्बधी द्रव्योपार्जन की चिन्ता से मुक्त ही। लोभ एव अधिकार मोह के कारण बरसाती मेढको की भाँति नित्य प्रति बढती जाने वाली इन सस्थाओ मे परस्पर सहयोग, सद्भाव और एक सूत्रीकरण नही हो पाता। फलस्वरूप समाज की शक्ति और द्रव्य का तो पर्याप्त व्यय होता है किन्तु किसी दशा मे भी वाञ्छनीय इष्ट सिद्धि नही हो पा रही है। इन सस्थाओ के अधिवेशन अवश्य ही बडी धूम धाम और शान के साथ होते हैं, उनके प्रचारक भी स्थान-स्थान मे घूमते हैं, कई एक संस्थाओ के अपने मुखपत्र भी हैं, पुस्तकादि के रूप मे भी साहित्य प्रकाशित होता है, किन्तु उपरोक्त दोषो के कारण तथा निस्वार्थ कर्त्तव्यशीलता के अभाव मे न इन सस्थाओ का और न इनसे सबधित व्यक्तियो का समाज पर कोई प्रभाव पडता है। वार्षिक कार्य विवरण आकर्षक रिपोर्टों के रूप मे प्रकाशित होते है किन्तु ठोसकार्य कुछ भी होता नही दीखता। समस्याए बढती चली जाती है पर किसी समाज की समस्या का भी सन्तोषजनक समाधान नही होता। समाज सुधार शिक्षा, राजनैतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक-किसी भी क्षेत्र में जो जो आवश्यकताएं हैं वे इन्ही की पूर्ती के लिए स्थापित इतनी सारी संस्थाओं सैकडो नेताओ, सैकडो ही विद्वानो और सौ के ही लगभग सामयिक पत्रोके होते हुए भी प्राय. कुछ भी पूरी नही हो पा रही है। गत बीस वर्षों मे कई एक उच्च

कोटि की साहित्यिक शोध खोज निर्माण प्रकाशन आदि सम्बंधी संस्थाओं का जन्म हो चुका है। किन्तु उनमें भी प्रबन्ध और व्यवस्था की दृष्टि से अन्य सामान्य जैन संस्थाओं के ही अनेक दोष हैं। पृथक-पृथक उन सबकी शक्ति सीमित और अल्प है और व्यक्तिगत स्वार्थों अथवा ईर्ष्या द्वेषादि के कारण उनमें परस्पर सहयोग और एकसूत्रता नही हो पाती। फलस्वरूप साहित्य निर्माण और प्रकाशन प्रगति में भी जितना योगदान वे कर सकती थीं उनका अल्पांश मात्र ही हो रहा है।

फिर भी इस युग में साहित्यिक, ऐतिहासिक सांस्कृतिक एवं दार्शनिक खोज शोध का कार्य तथा ग्रन्थों का सम्पादन प्रकाशन बहुत कुछ व्यवस्थित एवं प्रमाणीक ढंग पर होने लगा है। विभिन्न उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों का मिलान करके, विवक्षित विषय सम्बन्धी पूर्वापर साहित्य के साथ तुलना पूर्वक सावधानी के साथ पाठ संशोधन, अनुवाद, व्याख्या, आवश्यक टिप्पणादि और विद्वत्तापूर्ण विस्तृत विवेचनात्मक प्रस्तावनाओं सहित महत्वपूर्ण प्राचीन ग्रन्थों के पुनर्सम्पादित संस्करण प्रकाशित होने लगे हैं। दिगम्बरों के प्राचीनतम आगम साहित्य-धवलादि टीकाओं सहित षट्खंडागम, कषाय पाहुड, महाबन्ध आदि ग्रन्थराजों के भी उपरोक्त प्रकार पुनर्सम्पादित संस्करण प्रकाश में आ रहे हैं। प्राचीन जैन अपभ्रंश साहित्य का भी उद्धार हो रहा है। कितने ही अपभ्रंश ग्रन्थ प्रकाश में आ गये हैं, जिनसे कि हिन्दी भाषा के विकास और इतिहास सम्बन्धी विचारों में भारी क्रान्ति उत्पन्न हो गई है। हिन्दी के पुरातन जैन कवियों और लेखकों का साहित्य भी प्रकाश में आ रहा है। जैन धर्म, जैन दर्शन, जैन कला, जैन साहित्य, राजनीति में जैन नेतृत्व आदि विषयों पर विविध भाषाओं में स्वतन्त्र ऐतिहासिक ग्रन्थ, शिला लेख संग्रह, प्रशस्ति संग्रह निर्माण पत्रसंग्रह, ग्रन्थसूचियें, शब्द कोष, उद्धरण कोष आदि तथा मूर्ति विधान, स्थापत्य, चित्रकला आदि विविध कलाओं और गणित ज्योतिष चिकित्सा विज्ञान आदि विविध विषयों तथा सामान्यतया जैन सांस्कृतिक देनों

के सम्बन्ध मे भी उत्तम कोटि की पुस्तके प्रकाशित होने लगी हैं। पिछले युगो मे ये कार्य प्राय: करके अग्रेज, जर्मन, फ्रासीसी आदि विदेशी तथा कतिपय जैनेतर भारतीय विद्वानो द्वारा ही सम्पादित हो रहा था, किंतु अब इस क्षेत्र मे शायद ही कोई विदेशी विद्वान कार्य कर रहा हो, और इस दिशा मे प्रयत्नशील उच्चकोटि के भारतीय विद्वानों मे स्वय जैन विद्वानो की सख्या भी कम नही है तथा उसमे दिन-प्रतिदिन वृद्धि होती जाती है। कई एक यूनीवर्सिटियों मे भी, विशेषकर श्वेताम्बर समाज के उद्योग से कुछ विद्वान जैन रिसर्च का कार्य कर रहे हैं। मौलिक कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, प्रहसन, निबन्ध, साहित्यिक आलोचन आदि शुद्ध साहित्यिक विषयो के भी अनेक श्रेष्ठ लेखक और कलाकार जैनो मे विद्यमान हैं। किन्तु जैसा कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन के करांची अधिवेशन मे साहित्य परिषद के अध्यक्ष आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने अभिभाषण मे कहा था कि 'अजैन विद्वानो को यह शिकायत अभी तक है कि जैनियो का साहित्य महत्त्वपूर्ण एवं विपुल मात्रा मे होते हुए भी अभी तक उसके ऐसे अनुवादित सम्पादित सस्करण प्रकाश मे नही आ पाये जो जैनेतर विद्वत्समाज द्वारा ग्राह्य हो।' पर वास्तव मे बात बिलकुल ऐसी ही नही है। अनेक जैन ग्रन्थो के वैसे सस्करण प्रकट भी हो चुके हैं। हाँ जैनो ने उन्हें अजैन जनता और विद्वानो तक पहुंचाने का उपयुक्त प्रयत्न नही किया और अजैन विद्वानो ने उन्हे स्वयं प्राप्त करके अध्ययन करने मे उदासीनता भी दिखलाई है। कई वर्षों से निरन्तर प्रयत्न करते रहने पर भी हिन्दी साहित्य सम्मेलन जैसी सार्व सस्था ने हिन्दी जैन साहित्य को अपने पाठ्यक्रम आदि मे सम्मिलित करने मे उपेक्षा ही बरती है। अधिकाश विश्वविद्यालय प्रेरणा करने पर भी जैन रिसर्च को अपने यहाँ स्थान देने मे स्वत. तैयार नही होते। राजकीय अथवा अखिल भारतीय साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि परिषदों और सस्थानों में भी उसकी उपेक्षा ही की जाती है। ऐसी परिस्थिति मे जैनो का ही प्रथम कर्त्तव्य है कि वे इन दिशाओ में दृढ निश्चय के साथ अग्रसर हों,

उक्त विश्वविद्यालय आदि को तथा जैनेतर विद्वानों को जैनाध्ययन की ओर आकृष्ट करें और अपने साहित्य रत्नों को बाह्य समाज के लिये सुलभ कर दें, उनका यथोचित उपयोग किये जाने में प्रोत्साहन एवं सुविधाएं प्रदान करें तथा सभी महत्वपूर्ण पुरातन ग्रन्थों के ऐसे संस्करण भी प्रकाशित कर दें जो सर्वग्राह्य हों।

इस युग के प्रारम्भ के पूर्व से ही देश सार्वजनिक राष्ट्रीयता के प्रभाव से ओत प्रोत रहा है। सतत् आन्दोलनों और भीषण संघर्षों के पश्चात तथा अनेक त्याग और कष्ट सहन करके अब एक प्रकार से पराधीनता के पाश से मुक्त होकर स्वतंत्र वायुमंडल में सांस ले सका है। इस राष्ट्रीय आन्दोलन में भी जैन समाज ने अपनी संख्या के अनुपात से कहीं अधिक सहर्ष योगदान दिया, और धन एवं जन के यथेष्ठ बलिदान द्वारा स्वातंत्र्य आन्दोलन को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग और सहायता दी। राष्ट्रीयता के रंग में डूबा हुआ साहित्य भी निर्माण किया। और आज भी प्रायः समग्र जैन समाज तन मन धन से राष्ट्रीय महासभा तथा राष्ट्र के सर्वमान्य कर्णधारों के साथ है। राष्ट्र की समस्त राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक प्रगतियों में वह अभिन्न रूप से उनके साथ है, अपनी स्वतंत्र धार्मिक एवं सांस्कृतिक सत्ता रखते हुये भी अखिल भारतीय राष्ट्र का अभिन्न एवं अविभाज्य अंग है।

सामयिक पत्र पत्रिकाएं

भारतवर्ष में छापेखाने के प्रारम्भ और इतिहास पर पीछे प्रकाश डाला जा चुका है। छापेखाने की स्थापना होने पर समाचार पत्रों का प्रकाशन स्वाभाविक था। परन्तु श्री ब्रजेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय लिखित 'देशीय सामयिक पत्रेर इतिहास, खंड १' के अनुसार भारत का सर्व प्रथम समाचारपत्र २९ जनवरी सन् १७८० ई० को 'बंगाल गजट' के नाम से अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित हुआ। यह पत्र साप्ताहिक था, हिकि साहब इसके

सस्थापक थे और यह दो वर्ष तक चला । इसके पश्चात इन्डिया गजट, कलकत्ता गजट, आदि अ ग्रेजी पत्र निकले । सन् १७९९ मे भारत के गवर्नर जनरल लार्ड वेलेजली ने अखबारो पर कडा प्रतिबन्ध लगा दिया जो सन् १८१८ मे लार्ड हॅस्टिग्ज द्वारा हटाया गया, और उसके स्थान मे कुछ नियम बना दिये गये । अत इस बीच मे पुराने पत्रो का प्रकाशन और नवीन पत्रो की स्थापना प्राय बन्द ही रही । सनु १८१८ के उपरान्त फिर से नवीन पत्र निकलने लगे । बगला भाषा का सर्व प्रथम पत्र 'दिग्दर्शन' श्रीरामपुर मिशन द्वारा अप्रेल सन् १८१८ मे निकाला गया । मई सनु १८१८ मे बगला का 'समाचार दर्पण' और तत्पश्चात् 'बगला गजट' निकले । उर्दू का सर्व प्रथम पत्र 'जाम इ जहान् नूमा' २८ मार्च सन् १८२२ को और फारसी का 'मीरातुल अखबार १२ अप्रेल सन् १८२२ को निकले । ७अक्तूबर सनु १८२२ को समाचार पत्रो पर फिर से कडे प्रतिबन्ध लगा दिये गये अप्रेल सनु १८२३ मे प्रथम भारतीय प्रेस कानून बना जिसके अनुसार पत्रो के प्रकाशन के लिये सरकार की अनुमति लेना अनिवार्य थी । ४ दिसम्बर सनु १८२७ से यह कानून अ शत रद्द हो गया और सनू १८३५ मे बिलकुल हटा दिया गया, किन्तु सन् १८५७ से वह फिर से लागू कर दिया गया ।

उन्ही बनर्जी महोदय के एक दूसरे लेख 'हिन्दी का सर्व प्रथम समाचार-पत्र' (विशाल भारत, फर्वरी सन् १९३१) से विदित होता है कि हिन्दी का सर्व प्रथम पत्र, जैसा कि प्राय समझा जाता था, सन् १८४५ मे स्थापित 'बनारस अखवार' नही था, वरन् ३० मई सन् १८२६ को कानपुर निवासी पं० जुगलकिशोर शुक्ल द्वारा कलकत्ते से निकाला जाने वाला साप्ताहिक 'उदन्त मार्त्तण्ड' था, जिसका वार्षिक मूल्य दो रुपये था, और जो प्रत्येक मंगलवार को ३७, आमडा तल्ला गली कोलू टोला, कलकत्ता से प्रकाशित होता था । इसके पश्चात् ९ मई सन् १८२९ को राजा राममोहन राय द्वारा दूसरा हिन्दी पत्र 'बगदूत' प्रकाशित हुआ और अन्त मे सनु १८४५ मे बनारस से 'बनारस अखबार' निकला । मराठी के 'कल्प-

तप आणि आनदवृत' मन् १८६७ मे श्रौर 'केसरी' सन् १८८० मे निकले।

जैन सामयिक पत्रों में सर्व प्रथम सम्भवतया गुजराती मासिक 'जैन दिवाकर' था जो 'जैन श्वेताम्बर ग्रन्थ गाइड' तथा 'जैन साहित्यनो-संक्षिप्त इतिहास' के अनुसार अहमदाबाद से श्री छगनलाल उमेदचन्द द्वारा वि० स० १९३२ (सन् १८७५ ई०) मे प्रकाशित किया गया था और लगभग दस वर्ष चला सन् १८७९ में केशवलाल शिवराम द्वारा गुजराती 'जैन सुधारस' निकला जो एक वर्ष चलकर ही बन्द हो गया।

दिगम्बर समाज का सर्व प्रथम सामयिक पत्र सन् १८८४ के प्रारम्भ में पं० जीयालाल जैन ज्योतिषी द्वारा फर्रुखनगर (उ० प्र०) से प्रकाशित साप्ताहिक 'जैन' था। इसका वार्षिक मूल्य ढाई रुपये था, और यह हिन्दी भाषा का भी सर्व प्रथम जैन पत्र था, दस बारह वर्ष पर्यन्त चला भी। इन्ही पं० जीयालाल ने उसके कुछ ही समय पश्चात् उर्दू मे 'जीयालाल प्रकाश' भी निकालना आरम्भ किया जो कि उर्दू का सर्वप्रथम जैनपत्र था। तिलम्बर सन् १८८४ मे शोलापुर से स्वर्गीय सेठ रावजी हीराचन्द नेमचन्द दोशी ने मराठी-गुजराती-हिन्दी का मासिक 'जैन बोधक' निकालना शुरू किया। यह पत्र मराठी का तो सर्व प्रथम जैन पत्र था ही, अब तक जीवित रहने के कारण वर्तमान जैन पत्रों मे भी सर्व प्राचीन है और इने गिने सर्वाधिकजीवी भारतीय पत्रों मे से एक है। इसके पश्चात् सन् १८८४ मे ही जैनधर्म प्रवर्तक सभा अहमदाबाद ने डाह्या भाई धोलशा जी के निरीक्षण में गुजराती 'स्याद्वाद सुधा' अप्रैल सन् १८८५ मे जैन हितेच्छुसभा भावनगर द्वारा 'जैन हितेच्छु' और इसी वर्ष अहमदाबाद से गुजराती मे श्वेताम्बर 'जैन धर्म प्रकाश' निकले, जिनमे से अन्तिम पत्र अभी तक चालू रहने के कारण वर्तमान श्वेताम्बर पत्रों मे सर्व प्राचीन है।

इसके पश्चात् तो जैन सामयिक पत्र हिन्दी, गुजराती, मराठी, उर्दू, अंग्रेजी, कन्नडी आदि भाषाओं मे ज्यादा निकलने लगे। केवल दिगम्बर

समाज के द्वारा ही निम्नोक्त अनेक पत्र कुछ ही वर्षों के भीतर प्रकाश मे आये—सन् १८९२ मे मराठी मासिक 'जन विद्यादानोपदेश प्रकाश; सन् १८९३ मे बगलौर से सेठ पद्मराज द्वारा हिन्दी 'काव्याम्बुधि', सन् १८९३-९४ मे बम्बई से प० पन्नालाल बाकलीवाल द्वारा 'जैन हितैषी' मासिक जिसका सम्पादन प्रकाशन सन् १९०४ से प० नाथूराम प्रेमी ने किया, प० जुगल किशोर मुख्तार भी कुछ समय तक इसके सपादक रहे। यह पत्र अपने समय का सर्वश्रेष्ठ हिन्दी जैन मासिक रहा हैं। सन् १८९४ मे ही दि० जैन महासभा का हिन्दी साप्ताहिक 'जैनगज़ट' चालू हुआ और बाबू सूरजभान वकील ने उर्दू का जैनहितउपदेशक' नामक पत्र भी निकाला। सन् १८९५ मे हिन्दी मासिक 'जैन प्रभाकर' निकला, १८९६ मे हिन्दी साप्ताहिक 'जैनमार्त्तण्ड' और १८९७ मे बाबू सूरजभान द्वारा ज्ञान प्रकाशक' नामक मासिक पत्रिका, बाबू ज्ञानचन्द जैनी लाहौर द्वारा 'जैन पत्रिका' तथा पडित पन्नालाल बाकलीवाल द्वारा वर्धा से 'जैन भास्कर' निकले। सनु १८९८ मे बम्बई प्रान्तिक दि० जैन सभा की ओर से पडित गोपालदास जी बरैया ने हिन्दी साप्ताहिक 'जैन मित्र' की अपने ही सम्पादन मे स्थापना की। ब्र० शीतल प्रसाद जी ने बहुत काल तक इसका सम्पादन किया। यह पत्र अभी तक चालू है और सूरत से प्रकाशित होता है। सन् १८९९ मे हिन्दी मासिक 'जैनी' और १९०० मे हिन्दी त्रैमासिक 'जैनेतिहास सार' निकले। सन् १९०२ मे मराठी कन्नडी मिश्रित 'प्रगति आणि जिनविजय' निकला और सन् १९०४ मे अग्रेजी 'जैन गजट' का प्रारम्भ हुआ। यह पत्र वर्तमान मे अजिताश्रम लखनऊ से बाबू अजितप्रसाद जी के सम्पादन काल मे निकलता है। इसके कुछ ही समय पश्चात कन्नडी का 'विवेकाभ्युदय' निकला और सन् १९०७ मे सूरत से हिन्दी गुजराती मिश्रित मासिक 'दिगम्बर जैन'। सन् १९२१ से ब्र० पडिता चन्दा बाई आरा द्वारा सम्पादित हिन्दी मासिक 'जैन महिलादर्श' निकल रहा है, और सन् १९१३ मे पडित बाकलीवाल द्वारा एक बगला पत्र

'जिनवाणी' निकला जो कुछ समय तक चलकर बन्द हो गया। मुनि जिन विजय जी द्वारा सम्पादित हिन्दी गुजराती अंग्रेजी का श्वेताम्बर 'जैन साहित्य संशोधक' त्रैमासिक भी अत्यधिक महत्वपूर्ण पत्र था जो कुछ वर्ष चलकर बन्द हो गया। पंडित दरबारीलाल सत्यभक्त के सम्पादन में बम्बई का 'जैन जगत' भी कई वर्ष बहुत अच्छा निकला था। उपरोक्त पत्रों के अतिरिक्त और भी अनेक पत्र पत्रिकाएं, विशेष रूप से सन् १९२० के पश्चात चालू हुईं, जिनमें से अधिकतर अल्पाधिक काल तक चलकर बन्द हो गईं। इस प्रकार छापे के प्रारम्भ से अब तक लगभग ढाई सौ जैन सामायिक पत्र पत्रिकाएं निकल चुकी है जिनमें से लगभग डेढ़सौ तो अस्तगत हो चुकी और एक सौ के लगभग अभी भी चालू हैं। प्रारम्भ से अब तक लगभग एक दर्जन सार्वजनिक पत्र पत्रिकाओं का सञ्चालन अथवा सम्पादन भी जैनों द्वारा हुआ है।

विवरण सूची का संक्षिप्त सार

प्रस्तुत पुस्तक जैन मुद्रित प्रकाशित पुस्तकों, सामायिक पत्रों, साहित्यिक संस्थाओं, प्रकाशकों और लेखकों आदि की उस संक्षिप्त परिचयात्मक विवरण सूची की पूर्व पीठिका है जो कि हमने जुलाई सन् १९४७ में तैयार की थी और जिसे इस पुस्तक के दूसरे भाग के रूप में प्रकाशित करने की योजना है। उक्त विवरण सूची में संकलित तथ्यों से जो निष्कर्ष प्राप्त होते हैं वे निम्न प्रकार है —

उक्त विवरण सूची में २६८० पुस्तकों का उल्लेख है जिन्हें भाषा की अपेक्षा ६ विभागों में विभाजित किया गया है।

(१) प्रथम विभाग हिन्दी का है जिसमें संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भी सम्मिलित है। इसमें कुल २०५२ पुस्तकें जिनमें से—संस्कृत की १८०, प्राकृत की ४४, अपभ्रंश १८, हिन्दी प्राचीन (सन् १८५० अथवा सं० १९७० से पूर्व निर्मित)—२७५,—प्राचीन ग्रन्थों के अर्वाचीन टीका अनुवादादि—१७७

आधुनिक हिन्दी मौलिक—१११३, और जैन धर्म के सम्बंध मे प्रकाशित महत्व पूर्ण हिन्दी भाषण व्याख्यानादि—४५.

(२) मराठी की ४८ जिनमे से मौलिक १३ और अनुवाद ३५ हैं।

(३) गुजराती की ७० जिनमे मौलिक ४७ और अनुवाद २३ है।

(४) बगला की ५२ जिनमे मौलिक ४२ और अनुवाद १० है।

(५) उर्दू की १६८ जिनमे मौलिक १५१ और अनुवाद १७ हैं।

(६) अ गरेजी आदि यूरोपिय भाषाओ मे २९० जिनमे से मौलिक २३० और अनुवादादि ६० हैं। इनसे पत्र पत्रिकाओ मे प्रकाशित लेख निबन्ध आदि सम्मिलित नही है।

पुस्तक निर्माता—उपरोक्त साहित्य के निर्माताओ की दृष्टि से जिनका पूर्णयोग १३०३ है—सस्कृत ग्रन्थो के मूल लेखक १०७, टीकाकार ३८, योग १४५, प्राकृत ग्रन्थो के मूल लेखक १८, टीकाकार २, योग २० अपभ्र श ग्रन्थो के लेखक ७

हिन्दी प्राचीन पद्य लेखक ४०, गद्य लेखक १३, योग ५३. (बाद की शोध खोज से हमे हिन्दी पुरातन गद्य के ५० से अधिक लेखको और उनकी सवासौ के लगभग गद्य कृतियो का पता चला है). आधुनिक हिन्दी के मौलिक लेखक (गद्य पद्य दोनो के)—२९५, टीकाकार ४८, अनुवादक ९१, सम्पादक आदि ११८, सग्रह या सकलन कर्त्ता २४, और १९५ ग्रथ ऐसे हैं जिनके लेखक आदि अज्ञात है। मराठी के मौलिक लेखक ७, और अनुवादक १४, अज्ञात ६ गुजराती के मौलिक लेखक २३, और अनुवादक १५, अज्ञात ७ बगला के मौलिक लेखक १५, अनुवादक ५, और अज्ञात १. उर्दू के मौलिक लेखक ५३ और अनुवादक १२ अ गरेजी आदि के मौलिक लेखक १०३; अनुवादक ३५, और अज्ञात ८.

प्रकाशक—इन पुस्तको के निर्माण कराने और प्रकाशित करने मे जिन जिन सस्थाओ तथा व्यक्तियो ने भाग लिया है उनकी संख्या निम्न प्रकार है।

(१) साहित्यिक शोध, खोज, निर्माण, प्रकाशन, प्रचार आदि उद्देश्यों को लेकर सामाजिक द्रव्य से अथवा व्यक्तिगत ट्रस्ट आदि के द्वारा स्थापित एवं सञ्चालित जैन साहित्यिक संस्थाएं और ग्रन्थ-माला समितियें—३६

(२) अन्य विविध धार्मिक सामाजिक जैन संस्थाएं—६१

(३) जैन व्यवसायी प्रकाशन और पुस्तक विक्रेता—३१

(४) जैन स्त्री पुरुष, व्यक्तिगत रूप से—२६०

(५) अजैन सज्जन, संस्थाएं और प्रकाशक—२६

पूर्णयोग ४४७.

विषय विभाजन—की दृष्टि से उक्त पुस्तकों की संख्या निम्न प्रकार है—

(१) धर्म २७५, (२) सिद्धांत एवं तत्त्व ज्ञान १२२,

(३) अध्यात्मिक ग्रन्थ १५८, (४) दर्शन एवं न्याय शास्त्र ६४.

(५) आचार शास्त्र १५२, (६) पुराण चारित्र ११६, (७) प्राचीन कथा साहित्य ७८, स्तोत्र स्तुति पद-भजनादि संग्रह—२११,

(९) पूजा प्रतिष्ठापाठ और तीर्थमहात्म्यादि १३६, (१०) मन्त्र तन्त्रादि ७. (११) नीति सुभाषितादि १६, (१२) तुलनात्मक अध्ययन, समीक्षा परीक्षा, खंडन मंडनादि १६५, (१३) साहित्य व्याकरण छन्द अलंकार कोषादि ४७, (१४) विज्ञान गणित ज्योतिष निमित्त शास्त्र, वैद्यक, रत्न परीक्षा, वास्तुसार आदि १८,

(१५) इतिहास पुरातत्त्व राजनीति, जीवन चरित्र आदि १८५,

(१६) भूगोल खगोल, यात्रा विवरण, स्थान परिचयादि ५५,

(१७) काव्य नाटक उपन्यास कहानी आदि २२८,

(१८) समाज सुधार व शिक्षा (१९) स्त्री व बालोपयोगी ७५.

(२०) महत्त्वपूर्ण भाषण व्याख्यानादि ५०, (२१) फुटकर विविध १०३.

इस विषय विभाजन में अंग्रेजी पुस्तकें सम्मिलित नहीं की गई हैं।

सामयिक पत्र पत्रिकाएं—यद्यपि गणना सुधाई को जैन समा-

यिक पत्र पत्रिकाए विभिन्न भाषाओं तथा साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, षाठमासिक आदि विविध रूपो में निकल चुकी हैं। इनमे से जिनके विषय में कुछ ज्ञात हो चुका है ऐसी १६६ पत्र पत्रिकाए (६० दिगम्बर और ६६ श्वेताम्बर आदि) तो अल्पाधिक समय तक चल कर बन्द हो चुकी हैं।

वर्तमान मे ज्ञात चालू जैन पत्रों की सख्या ८४ हैं जिनमे से लगभग ५० दिगम्बर, २६ श्वेताम्बर और ८ स्थानक वासी हैं। इनमे से हिन्दी के ५० मराठी ३, गुजराती १६, कन्नडी २, उर्दू १, अगरेजी २, हिन्दी गुजराती मिश्रित ७, हिन्दी मराठी १, हिन्दी उर्दू १, हिन्दी अगरेजी १ हैं। इन पत्रों मे षाठमासिक २, त्रैमासिक ५, मासिक ४५, पाक्षिक १६ और साप्ताहिक १६ हैं। दैनिक कोई नही है।

सम्पादन प्रकाशन की उत्तमता तथा साहित्यिक एव ऐतिहासिक दृष्टि से निम्नलिखित वर्तमान जैन पत्र पत्रिकाएँ पर्याप्त महत्त्व पूर्ण हैं—अनेकान्त (देहली), जैन सिद्धान्तभास्कर (आरा), दी जैना एटीक्वेरी (आरा), ज्ञानोदय (बनारस), श्री जैन सत्य प्रकाश (अहमदाबाद), जैन भारती (कलकत्ता), जैन गजट अगरेजी (लखनऊ), आत्मधर्म (सोनागढ), जैन महिलादर्श (सूरत) जैन मित्र (सूरत), दिगम्बर जैन (सूरत), जैन सन्देश (आगरा), वीर वाणी (जयपुर), जैन जगत (वर्धा), सगम (वर्धा), वीर (देहली), श्रमण (बनारस), जैन बोधक (शोलापुर), प्रगति आणि जिन विजय (बेल गाँव), तारण सदेश (दमोह), जैन प्रचारक (देहली) जैन प्रकाश (बम्बई), प्रबुद्ध जैन (बम्बई), जिनवाणी (भोपालगढ), तरुण जैन (कलकत्ता), वीर लोंकाशाह (जोधपुर) श्वेताम्बर जैन (आगरा), जैन (भाव नगर) इत्यादि।

जैन सामयिक पत्रो के सम्बन्ध में जैन मित्र (कार्तिक सुदी ८, वी० सं० २४६४, पृ० ११-१२) में 'दिगम्बर जैन समाज के भूत और वर्तमान कालीन पत्र' शीर्षक से श्री शान्ति कुमार जैन ठवली, नागपुर ने ४८ भूतकालीन और २६ चालू पत्रो की सूची प्रकाशित की थी। उसके पश्चात श्रीयुत अगर चन्द्र नाहटा ने ओस वाल नवयुवक वर्ष ८ संख्या १, मई सन् १९३७ के अङ्क मे

पृष्ठ ४२ पर 'जैन समाज के वर्तमान सामयिक पत्र' लेख में उस समय चालू ३६ पत्रों की संक्षिप्त परिचयात्मक सूची दी थी तथा जैन सिद्धान्त भास्कर भाग ५ किरण १, पृ० ३६ पर प्रकाशित अपने लेख 'भूतकालीन जैन सामयिक पत्र' मे समाचार पत्रो के इतिहास पर संक्षिप्त प्रकाश डालते हुए १०५ भूतकालीन तथा ६६ चालू पत्रो की नाम सूची दी थी। और जैन मित्र वर्ष ५१, अङ्क ७ (ता० २२ दिसम्बर सन् १९४६) मे जैन समाज के समाचार पत्र शीर्षक के अन्तर्गत ५७ चालू पत्रो की जिनमे ३३ दिगम्बर और २४ श्वेताम्बर है तथा ९२ भूतकालीन पत्रों की जिनमें ६८ दिगम्बर और २४ श्वेताम्बर हैं एक सूची दी है।

उपरोक्त विभिन्न सूचियों में से किसी मे भी वे लगभग एक दर्जन सार्वजनिक पत्र सम्मिलित नहीं हैं जिनका सम्पादन, प्रकाशन अथवा सचालन जैनो द्वारा किया गया है और जिनमे से कई पत्र पर्याप्त लोक प्रिय भी रहे है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सामयिक पत्रो और पत्र कला की दृष्टि से भी अल्प सख्यक जैन समाज ने पर्याप्त उन्नति की है और वह किसी से पीछे नहीं है। यदि इसमें कोई दोष है तो यही कि जिन पत्रो की सख्या आवश्यकता से अधिक है, उनका पठन प्राय. जैन समाज के भीतर ही सीमित होने से एक भी पत्र की ग्राहक सख्या उसे स्वनिर्भर करने के लिये पर्याप्त नहीं है। फलत सम्पादक लेखको और पत्रकारों की भी आर्थिक दुर्दशा है।

ही है और उनमे भी कन्नडी, तामिल, तेलगू, मलयालम आदि भाषाओ मे प्रका-
शित जैन पुस्तको का समावेश नही है। दो ढाई हजार के लगभग पुस्तकें श्वेता-
म्बर तथा स्थानकवासी आदि अन्य जैन सम्प्रदायो द्वारा भी प्रकाशित हो
चुकी हैं।

अस्तु डा० माता प्रसाद गुप्त की पूर्वोल्लिखित 'हिन्दी पुस्तक साहित्य' मे
दी हुई लगभग ५५०० पुस्तको और लगभग ४५०० लेखको के प्राय बराबर
ही समग्र मुद्रित प्रकाशित जैन पुस्तक साहित्य और उसके निर्माता आदि हैं।
यदि केवल हिन्दी जैन पुस्तको को ही लिया जाय तो वे भी समग्र हिन्दी पुस्तकों
के दो तिहाई से अधिक अवश्य हैं, और भाषा, शैली, विषय महत्त्व और
लोकोपयोगिता की दृष्टि से भी सामान्यत उनकी अपेक्षा निम्नकोटि की
नही हैं।

साराश यह है कि स्वतन्त्र भारतीय राष्ट्र, भारत के सास्कृतिक विकास और
साहित्यिक प्रगति के लिये यह परम आवश्यक है कि देश के साहित्यिक और
विद्वान जैन साहित्य को भी समग्र भारतीय साहित्य का अभिन्न अविभाज्य
अङ्ग मानकर निष्पक्ष एव सहृदय दृष्टि से ज्ञान की विविध शाखाओ मे उसका
अध्ययन मनन और उपयोग करें। उनकी दृष्टि मे वह उपनिषद जैन आगम
और बौद्ध त्रिपिटक, पाणिनी और पूज्यपाद, पातञ्जलि अश्वघोष व्यास और
कुन्द कुन्द व समन्तभद्र, चरक सुश्रुत उग्रादित्य और नागार्जुन, शकर धर्म-
कीर्ति और अकलक, कालिदास और जिनसेन, योगीन्दु सरहपा कबीर और दादू,
तुलसीदास और बनारसीदास इत्यादि महापुरुषों और उनके विचारो एव रचनाओ
का समान महत्त्व होना चाहिये। बिना किसी भेद भाव के इन सभी महान पूर्व
पुरुषो का सम्मान एव अध्ययन ज्ञान के सर्वतोमुखी विकास, राष्ट्र की एक
सूत्रता तथा देश और समाज के कल्याण का अमोघ साधन है, इसमें कुछ भी
सन्देह नही।

जैनाध्ययन का महत्त्व और प्रगति

श्रमण सस्कृति की प्रधान धारा जैन सस्कृति सुदूर अतीत से चली आई

प्राय सर्व प्राचीन विशुद्ध भारतीय संस्कृति है। अतः भारतीय संस्कृति का समुचित मूल्यांकन करने के लिए और आधुनिक भारत के ही नहीं वरन विश्व की भी सांस्कृतिक विकास में उससे पूरा पूरा लाभ उठाने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि जैन श्रमण संस्कृति के विविध अंगों का विशद एवं गंभीर अध्ययन किया जाय। वैसे तो १८ वीं शताब्दी ई० की अंतिम पाद में सर विलियम जोन्स से प्रारंभ करके अनेक पाश्चात्य विद्वानों द्वारा भारतीय साहित्य, कला, पुरातत्व तथा अन्य सांस्कृतिक विषयों का अध्ययन प्रारंभ हो गया था। १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अनेक उद्भट भारतीय विद्वान भी उक्त कार्य में सक्रिय सहयोग देने लगे थे, और सौ वर्ष के उपरान्त तो इस क्षेत्र में भारतीय विद्वानों का ही प्राय एकाधिकार हो गया है। इन पाश्चात्य एवं पूर्वीय विद्वानों ने अपने उपरोक्त अध्ययन के दौरान में प्रसंगवश जब तब जैन-धर्म, संस्कृति, इतिहास, साहित्य, कला, पुरातत्त्व, प्राच्यतत्त्व आदि का भी अत्याधिक अध्ययन एवं खोज शोध की और अपने महत्वपूर्ण गवेषणात्मक विवेचनों के द्वारा जैनाध्ययन को प्रगति प्रदान की। तथापि भारतीय अथवा विदेशी प्राच्यविदों का ध्यान अनेक कारणों से अभी तक भी उसकी ओर इतना आकृष्ट नहीं हो पाया जितना कि होना चाहिये था।

सांस्कृतिक आधार की दृष्टि से जैन धर्म, सिद्धान्त, तत्त्वज्ञान, दर्शन और सामाजिक आचार विचार एवं पर्व आदि के अतिरिक्त वर्तमान भारत को प्रदत्त जैन संस्कृति की स्थूल पुरातन भेंटें निम्नप्रकार हैं—विविध भाषामय तथा विविध विषयक विपुल जैन साहित्य, जैन ग्रन्थों की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ, जैन चित्र कला, जैन मूर्तिकला, जैनस्थापत्य और शिलालेखों, प्रतिमाओं, ताम्रपत्रों आदि पर अंकित जैन पुराभिलेख, इत्यादि।

जैन गृहस्थ के देवपूजा, गुरु उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप एवं दान इन दैनिक षट् आवश्यक कार्यों में दान देना अन्तिम एवं महत्वपूर्ण एक आवश्यक कर्तव्य है। शास्त्र, अभय, आहार एवं औषधिरूप चतुर्विध दान प्रकारों में शास्त्रदान का स्थान बहुत ऊँचा है। अतः शास्त्र दान संबंधी इन धार्मिक

विधान, जैन साधु वर्ग की सदैव से चली आई ज्ञान पिपासा अध्ययन शीलता और साहित्यिक अभिरुचि तथा धनी श्रावक की उदारता पूर्ण सहायता सहयोग एव श्रुतभक्ति के कारण आज भी भारतवर्ष के विभिन्न भागो मे ऐसे अनेक जैन ग्रन्थ भडार विद्यमान हैं जो अपने प्राचीन प्रमाणीक महत्त्वपूर्ण अंश समझे जाने योग्य हैं।

प्राकृत—प्राचीन भारतीय सस्कृति की अनेक विधि धाराओ का महत्त्व भली भाति समझने के लिए सस्कृत और प्राकृत, दोनो ही साहित्यो का साथ साथ अध्ययन करने की आवश्यकता है। अभिलेखीय आधार स्पष्टतया सूचित करते हैं कि सर्व साधारण से भावव्यजना के लिये प्राकृत भाषायें अत्य-धिक लोकप्रिय थी। उत्तर तथा दक्षिण दोनो ही प्रदेशो में प्राचीनतम काल से राजकीय आदेश तथा व्यक्तिगत लेखादि प्राकृत मे ही लिखे मिलते हैं। सस्कृत नाटको मे स्त्री आदि पात्रों के द्वारा प्राकृत का बहुत प्रयोग इस बात को प्रमा-णित करता है कि एक समय था जबकि प्राकृत भाषाएँ ही लोक प्रिय तथा साधारण बोल चाल की भाषाएँ थी। वस्तुत कई एक महिला कवित्रियो ने प्राकृत मे ही काव्य रचना की है। * इसमे भी सन्देह नही है कि जैन धार्मिक एव लौकिक गद्य पद्यात्मक प्राकृत साहित्य का सिलसिला अति प्राचीन काल से मध्य युग पर्यन्त अविच्छिन्न रूप से चला आया है, और यदि इस प्राकृत जैन साहित्य को सम्पूर्ण प्राकृत साहित्य मे से निकाल दिया जाय तो अवशेष नगण्य रह जाय।

किन्तु यद्यपि प्राय समस्त श्वेताम्बर जैन अर्धमागधी आगमग्रन्थ अ शतः अथवा पूर्णत एकाधिक सस्करणो मे प्रकाशित हो चुके हैं, तथापि मूल पाठों के समालोचनात्मक दृष्टि से सुसम्पादित संस्करण बहुत ही थोडे हैं। निर्यु-क्तियो एव चूर्णियो सहित इस समस्त अर्धमागधी साहित्य के ऐसे एक रस

---

*प्रो० जे० बी० चौधरी कृत 'संस्कृत कवित्रियों' भा० २। कपूर मंजरी नाटक का प्रथम अभिनय भी विदुषीरत्न अवन्ति सुन्दरी की प्रेरणा पर ही हुआ था।

प्रकाशनों की आवश्यकता है। पाटन के 'हेम चन्द्राचार्य ज्ञान मंदिर' ने हस्त-लिखित प्रतियों के स्थानीय संग्रहों को सुरक्षित एवं व्यवस्थित करने का जो स्तुत्य कार्य किया वह अन्य स्थानों के लिये भी अनुकरणीय है और वह उपरोक्त प्रकार के संस्करणों प्रकाशन के लिये आवश्यक अन्वेषण कार्य के लिये उपयोगी सिद्ध होगा। समग्र आगम ग्रन्थों के ऐसे प्रमाणिक सम्पादन से अर्धमागधी कोष,' 'पाइयसद्द महण्णव' आदि वर्तमान कोष ग्रंथों की कमी पूर्ति हो जायगी। ऐसे जैन पारिभाषिक शब्दों या पदों का जिन के कि अर्थों का तारतम्य जैन साहित्य के विभिन्न स्तरों में अध्ययन किया जा सके, कोई भी प्रमाणीक संकलन अभी तक नहीं बन पाया है। शुब्रिंग और जैकोबी ने ऐसे एक प्राकृत कोष के निर्माण करने के प्रश्न पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया था, किन्तु उसका कोई विशेष परिणाम नहीं निकला। इधर वीर सेवा मंदिर देहली में भी एक ऐसे ही पारिभाषिक जैन शब्द कोष 'जैन लक्षणावलि' का निर्माण कई वर्षों से हो रहा है।

हरिभद्र सूरि की 'समराइच्च कहा प्राकृत अथवा जैन महाराष्ट्री कथा साहित्य का सुन्दर व श्रेष्ठ प्रतिनिधित्व करती है, किन्तु उसकी पूर्ववर्ती 'कुवलय माला कहा' तथा उत्तरवर्ती 'सनतकुमार कहा' अभी तक संभवतया अप्रकाशित ही है।

प्राकृत साहित्य का वह स्थविर स्तर जो दिगम्बर जैनों द्वारा मान्य एवं समान्य पवित्र समझा जाता है, शिवार्य की भगवती आराधना, कुन्द कुन्द के पाहुड ग्रन्थ, वट्टकेर [1] कृत मूलाचार आदि विक्रम की प्रथम शताब्दी के ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। ऐसा विश्वास था और जो सत्य ही सिद्ध हुआ, [2] कि इनसे भी अधिक प्राचीनतर षट्खंडागमादि दिगम्बर जैन सिद्धान्त ग्रन्थों की धवल जयधवल आदि विशाल टीकाओं में दबे पड़े हैं। इन आगम ग्रंथों के

(१) ऐसा विश्वास करने के भी कारण है कि यह कुन्द कुन्द का ही उप-नाम था, देखिये जैना सेटीक्योरी; भा० कि०

(२) जै० पु०, भा० ६ पृ० ७५-८१, डा० हीरालाल का लेख।

सुसम्पादित अनुवादित सस्करण प्रकाशित हो चुके है। ऐसे गूढ जैन पारिभाषिक तत्त्व ज्ञान विषयक महान ग्रथो के, जो कि यत्र तत्र सस्कृत गद्यांशो से अलंकृत नैयायिक शैली की प्रौढ प्राकृत मे है, प्रकाश मे आने से भारतीय साहित्य की एक महत्त्व पूर्ण नवीन शाखा अध्ययनार्थ प्रस्तुत हो गई है। उपरोक्त सस्करणो की विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावनाओ मे अनेक ऐतिहासिक तथ्यो पर भी नवीन प्रकाश पडा है तथा और नवीन ऐतिहासिक शोध खोज को प्रोत्साहन मिला है।[1] उपरोक्त सभी ग्रन्थो मे बहुत सी सामग्री ऐसी है जो दिगम्बर श्वेताम्बर सम्प्रदाय भेद स भी प्राचीनतर हैं। यदि उसकी तुलना निर्युक्तियो आदि के साथ की जाय तो अनेक दिलचस्प तथ्यो के प्रकाश मे आने की सभावना है।

दिगम्बरो एव श्वेताम्बरो का प्राकृत एव सस्कृत भाषाओ में निबद्ध विशालकाय टीका साहित्य अभी तक मूल पाठो के अर्थों को समझने के लिये ही अध्ययन किया जाता रहा है। जो टीका ग्रन्थ प्रकाशित भी हो चुके हैं उनमे से इने गिनो का ही आलोचनात्मक अध्ययन हुआ है। निर्युक्तियो, चूर्णियें तथा अन्य सस्कृत प्राकृत टीकाए भी ज्ञातव्य सूचनाओ के ऐसे गहन भडार हैं जिनमे पूर्व पक्ष के प्रतिपादन के अतिरिक्त अनेक जैन अजैन ग्रथो के उद्धरण, अनुश्रुतियें नीति वचन, उपदेशात्मक आख्यान उपाख्यान, तथा अनेक तत्कालीन सांस्कृतिक सूचनाए भी उपलब्ध होती है। किन्तु इन सब विषयो की व्यवस्थित छान, गवेषणा' सकलन तथा यथोचित मूल्याकन अभी तक प्राय नही हो पाया। इनमे से अनेक ग्रन्थो की तिथियें ज्ञात हैं, अत उनमे वर्णित विषय कालानुक्रम की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। अस्तु प्रो० विधु शेखर भट्टाचार्य ने दिखलाया कि गुणरत्न धर्म कीर्ति के प्रमाण वार्तिक से भली भाँति परिचित था और उसने उक्त ग्रन्थ से अनेक उद्धरण भी दिये हैं।[2] श्री पी० के० गोडे ने अपने आकर्षक निबन्ध "शकराचार्य के पूर्ववर्ती जैन आधारो मे भगवत गीता" मे ऐसे उद्ध-

---

(१) अनेकान्त तथा जैना ऐंटेक्वेरी में प्रकाशित धवला का समय तथा स्वामी वीर सेन संबन्धी हमारे विभिन्न लेख।

(२) इ० हि० क्वा, १६, पृ० १४३.

रणों की पाठगत विशेषताओं पर प्रकाश डाला है।[१] डा० उपाध्याय ने सिद्ध किया कि गोमट्टसार की संस्कृत 'जीवतत्त्व प्रदीपिका' टीका के कर्तव्य का श्रेय जो केशववर्णी को दिया जाता रहा है वह भ्रम पूर्ण है, और उसके वास्तविक कर्त्ता १६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ मे दक्षिण कनारा के राजा सालुव मल्लिराय के समकालीन कोई नेमिचन्द्र थे।[२] इन उद्धरणों की जांच बहुधा उक्त टीकाओं की समयावधि निर्धारित करने मे भी सहायक होती है जैसा कि डा० उपाध्याय ने मूलाचार की वसुनन्दिवृत्ति पर से[३] तथा श्री गोडे ने मलयगिरि की तिथि के सम्बन्ध मे[४] दिखाने का प्रयत्न किया है। गतदशक मे प्रकाशित कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की प्रस्तावनाओं मे पं० महेन्द्र कुमार, प० कैलाश चन्द्र, प० जुगलकिशोर मुख्तार, प० दरबारी लाल कोठिया आदि ने तथा अपने फुटकर लेखों के रूप में कई अन्य विद्वानों ने भी इस प्रकार की सामग्री का विश्लेषण एवं उपयोग किया है।

अपभ्रंश—भाषा और साहित्य का अध्ययन प्राच्य विद्या का एक नवीन क्षेत्र है। जैकोबी, दलाल, गुणे, शहीदुल्ला, गांधी, वैद्य, उपाध्ये, हीरालाल एल्सडोर्फ आदि विद्वानों ने अनेक मूल्यवान अपभ्रंश ग्रंथों का सम्पादन किया है तथा इस भाषा के स्वरूप के सम्बन्ध मे महत्त्व पूर्ण विवेचन किये है। डा० पी० एल० वैद्य ने पुष्पदन्त के महापुराण का विद्वत्तापूर्ण संपादन किया। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने महाकवि स्वयम्भू की रामायण पर प्रभूत प्रकाश डाला। प्रेमी जी ने भी इन प्रारम्भिक जैन अपभ्रंश कवियों के सम्बन्ध में मूल्यवान सूचनाएं दीं। डा० उपाध्ये ने जोइन्दु के परमात्म प्रकाश का और प्रो० हीरालाल ने भी कई अपभ्रंश ग्रंथों का सम्पादन किया है। प० परमा-

(१) एनल्स भा० ओ० रि० इ०, २०, पृ० १८८ फुटनोट

(२) इपि० कर्णा०, ७, १,

(३) वूल्नर कमेमोरेशन वाल्यूम, लाहौर १९४० पृ० २५७ फु० नो०

(४) जै० स०, भा० ५, पृ० १३३ फु० नो०

तन्द शास्त्री ने कतिपय मध्य कालीन जैन अपभ्रंश कवियो का परिचय
दिया है।

अपभ्रंश भाषा और साहित्य के सम्बन्ध मे जो कुछ अधुना ज्ञात है वह
उसकी तुलना मे नगण्य सा है जो कि अभी भी राजपुताना, गुजरात आदि के
ग्रथ भडारो मे दबा पड़ा है। राजस्थान, मध्यभारत, गुजरात, महाराष्ट्र, सभवः
तथा उत्तर प्रदेश मे भी, सर्वत्र, ६ ठी शताब्दी पर्यन्त लगभग एक सहस्र
वर्ष तक अपभ्रंश भाषा का अभ्यास और प्रचलन बहुलता के साथ
रहा प्रतीत होता है, सो भी विशेष कर जैनो द्वारा। अपभ्रंश
कविता अपनी भाषा सम्बन्धी विशेषताओ के अतिरिक्त,
छन्द शास्त्र, आलकारिक प्रयोग, नीति तथा तत्कालीन जगत के निकटतम
अनुवीक्षण से ओत प्रोत है। उद्योतन सूरि के शब्दो मे उसका शब्द प्रवाह
पार्वतीय स्रोत की नाईं द्रुतवेग से प्रवाहित होता है। उसके युद्ध वर्णन
अत्यन्त रोमाञ्चक और प्रेम भक्ति करुणा आदि कोमल भावो के चित्रण
आश्चर्यजनक रूप से सजीव होते है। यद्यपि अपभ्रंश साहित्य का सम्बध
प्राय करके उच्चवर्गों से है तथापि वह सार्वजनिक जीवन के विविध अगो को
भली भाति प्रतिबिम्बित करता है। साहित्य के इस क्षेत्र मे न केवल एक शुष्क
भाषाविज्ञ को ही प्रचुर उपयोगी सामग्री उपलब्ध होती है वरन एक भावुक
कलाकार अथवा काव्य रसिक को भी अति रुचिकर काव्यानन्द का आस्वादन
प्राप्त होता है। भारतीय साहित्य मे कही अन्यत्र शब्द और भाव का, बाह्य
सगीत और अन्तरग गेयतत्त्व का ऐसा सुन्दर सामजस्य उपलब्ध नही होता।
साथ ही, लेखीय प्रमाण के रूप मे अपभ्रंश तथा प्राचीन गुजराती कवियो की
कृतियों का महत्त्व उनके पश्चाद्वर्ती महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वर, तुकाराम आदि
लेखको की रचनाओ से कही अधिक है।

---

(१) हमारे द्वारा सम्पादित जो इन्दु के मांगसार आत्मदर्शन की भूमिका तथा अनेकान्त १९४५; मे प्रकाशित हमारा लेख 'नागभाषा और नाग सभ्यता' भी पठनीय है।

अपभ्रंश साहित्य का गभीर अध्ययन एक अन्य दृष्टि से भी आवश्यक है। वह गुजराती व राजस्थानी भाषाओ के विकास के इतिहास के लिए निश्चयत अत्युपयोगी है। यही नही, बल्कि विद्वानो ने तो यह बात भी प्राय निर्विवाद स्वीकार करली है कि कतिपय गौण स्थानीय भेदो को लिए हुए अपभ्रंश भाषा ही जोकि प्राय सम्पूर्ण उत्तरी एव मध्य भारत मे बहुलता के साथ प्रचलित थी, आधुनिक भारतीय आर्य लोक भाषाओ का मूलाधार, उद्गम स्रोत एव प्रकृत रूप है। अतएव इसमें सन्देह नही कि उसका अध्ययन उक्त प्रान्तीय भाषाओ के शब्द कोष तथा व्याकरण सम्बंधी नियमो को समृद्ध करने में अत्युपयोगी सिद्ध होगा और अन्तर प्रान्तीय व्यवहार सवर्द्धन के हित हमारी राष्ट्रीय भाषा के शब्द भडार के समुचित निर्माण की वर्तमान समस्या को सुलझाने में भी सहायक होगा। जैनो के मूल आर्ष ग्रन्थो तथा उनकी टीकाओ में प्रयुक्त प्रयोगो के सम्बन्ध से यदि प्राकृत भाषाओ का लिपि विज्ञान, वर्ण विज्ञान एवं व्याकरण विषयक व्यवस्थित अध्ययन चालू किया जाय तो वह निश्चय ही मध्य कालीन भारतीय आर्य साहित्यिक ज्ञान के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

वास्तव में, स्वय आचार्य हेमचंद्र ने अपभ्रंश भाषा की व्यवहार्य रूपरेखा प्रदान करदी थी और अब जैकोबी, हीरालाल, वैद्य, उपाध्याय, एल्सफोर्ड प्रभृति विद्वानो ने उसके आदर्श सम्पादित सस्करण भी प्रस्तुत कर दिये हैं। सामान्यत. काम चलाने के लिए 'पाइयसद्दमहाण्णव' उनका एक अच्छा कोष भी है। अपभ्रंश साहित्य की यह भी विशेषता है कि इसमें भाषा के लिए उपयुक्त छन्दो का ही प्रयोग हुआ है। प्राकृत एव अपभ्रंश भाषा के छन्दोनुशासन के सम्बध में प्रो० एच० डी० वेलणकर द्वारा प्रस्तुत मूल्यवान सामग्री और विवेचन उक्त साहित्य के विद्यार्थियो के लिए अत्यन्त उपयोगी है। पूर्वी अपभ्रंश के सम्बंध में श्री हरप्रसाद शास्त्री, शहीदुल्ला, बागची, चौधरी आदि विद्वानो ने अच्छे सहाय्य प्रदान किये है। अस्तु प्राकृत भाषाओ की अपभ्रंश सम्भूत भारतीय आर्य भाषाओ की, जिनमें कि भगवान महावीर ने अपने

जीव दया मूलक सिद्धान्तो का उपदेश दिया, जिनमे सम्राट प्रियदर्शिन ने अपने स्मरणीय अभिलेख खुदवाये, जिनमे सैकडों कवियो ने जिनमें से कि हालकी सतसई और स्वयभू के निर्देशो द्वारा हमें केवल कुछ एक के ही नाम प्राप्त हुए हैं—लोक जीवनके विविध अगोके सम्बंधमें आल्हाद पूर्णगान किया, जिनमे कालिदासके स्त्री पात्रोंने अपने पत्र लिखे, वाक्पति, प्रवरसेन, उद्योतन, हरिभद्र, राजशेखर, स्वयभू, पुष्पदत गुणचन्द्र,रामपाणिवाद तथा अन्य विभूतियोंने अपनी मनोहारी गद्य-पद्य रचनाए की, जोइन्दु तथा कान्ह जैसे सन्तो ने अपने रहस्यवादी विचारो की अभिव्यजना की, जिनमे कि राजपूत चरणो के वीरतापूर्ण गीत आर्यावर्त के चारो कोनो में गू ज उठे, और जिनकी कि गोद मे वे आधुनिक भारतीय लोक भाषाए जन्मी और पनपी कि जिन्हें समृद्ध करने के लिए हम आज प्रयत्नशील हैं तथा जिनपर हमे इतना गर्व है—भारतीय सस्कृति तथा सभ्यता को समझाने के लिए उनकी उपेक्षा नही की जा सकती। ये प्राकृत और अपभ्र श भाषाए सहस्त्रो वर्ष पर्यन्त सार्वदेशिक और और सार्वजनीन रही, पाय सर्व ही प्रान्तीय भापाओ को, यहा तक कि द्रविड़ वर्ग की कन्नडी आदि भापाओं को भी इन्होने पर्याप्त रूप मे प्रभावित किया। और सर्वाधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि विभिन्न देशीय प्राकृत और अपभ्रंश भाषा मे आधुनिक प्रान्तीय भाषाओ की भाति कोई भेद पक अन्तर ही न था। उत्तर दक्षिण पूर्व पश्चिम सर्वत्र उनका प्राय एकसा प्रयोग होता था, साहित्य मे भी और बोलचाल मे भी। उनके पैशाची, शौरसेनी, गौडी, महाराप्ट्री आदि भेद वास्तव मे क्षेत्रपरक नही थे। जैसा कि डा० उपाध्याय ने स्पष्ट कहा है, यह कथन करना कि महाराप्ट्री प्राकृत के ग्रन्थ महाराप्ट्र मे ही लिखे गये अथवा जैन महाराप्ट्री का प्रयोग महाराप्ट्र के जैनो ने किया और शौरसेनी का शूरसेन देश के जैनो ने, नितान्त भ्रमपूर्ण है। यही बात तथा कथित विभिन्न अपभ्र शो के विपय मे है। इन भाषाओ का प्रदेश विशेष के साथ कोई सम्बध ही न था। वे तो चिरकाल पर्यन्त भारत व्रर्ष के सर्व साधारण की भाषाए रही थी, अन्तर्प्रान्तीय थी और सच्चे अर्थों मे अपने-अपने समय मे इस देश की राप्ट्रीय-लोक भाषाए थी।

अन्य भाषायें—मध्ययुगीय भारतीय आर्य भाषाओं के क्षेत्र के अतिरिक्त, जैन लेखकों ने भारतीय ज्ञान की विविध शाखाओं में न केवल संस्कृत प्राकृत आदि में ही वरन् कई द्रविड भाषाओं मे भी पर्याप्त योगदान किया है। अनेक प्राच्यविदों द्वारा अपने-अपने क्षेत्रो मे यथा शब्द शास्त्र, छन्द शास्त्र, काव्य शास्त्र, व्याकरण, राजनीति, न्याय, चिकित्साशास्त्र, गणित, ज्योतिष आदि में तद्विषयक जैन ग्रन्थो का अध्ययन भी किया जाने लगा है, किन्तु ये अध्ययन प्रायः करके संस्कृत साहित्य तक ही सीमित है।

इस सम्बंध में विचार करने के लिए जैन साहित्य को ही अध्ययन की इकाई मानकर चलना अधिक सुविधा जनक होगा, यद्यपि जैन ग्रन्थो से यह स्पष्ट है कि जैन विद्वानों की विविध विषयक साहित्यिक साधना भारतीय साहित्य की अन्य धाराओं से सर्वथा पृथक कभी नही रही। पूज्यपाद पातञ्जलि के महाभाष्य में पूर्णतया निष्णात थे, अकलंक ने अपने पूर्ववर्ती बौद्ध नैयायिकों की कृतियों का गंभीर अध्ययन किया और उनका सयुक्तिक खंडन एवं आलोचना की। हरिभद्र ने तो दिङ्नाग के न्याय प्रवेश पर टीका भी लिखी। रविकीर्ति एवं जिन सेन जैसे कवि पुंगव कालिदास और भारवि की कृतियो से भली प्रकार परिचित थे और उनमें आदर भाव रखते थे। सिद्धचन्द्र और भानुचन्द्र जैसे ग्रन्थकारो ने बाण तथा माघ के ग्रन्थो की टीकाएं लिखीं। डा० हर्टेल के कथनानुसार पंचतंत्र जैसे सर्व प्रसिद्ध ग्रन्थ के जितने संस्करण यूरोप आदि विभिन्न भारतेतर देशों में पहुंचे वे सब ही जैन विद्वानो द्वारा किये गये मूल ग्रन्थ के संवर्धित, परिवर्धित अथवा परिवर्तित रूप थे, तथा जैन 'शुक सप्तति' ही एक मात्र ऐसी भारतीय रचना है जो अपने मूल रूप में ही सम्पूर्ण अंशों को लेती भारत के बाहर सुदूर देशों मे पहुंची और प्रचार को प्राप्त हुई। अतएव भारत के सम्पूर्ण साहित्यिक ज्ञान के रूप एवं विकास को पूर्णतया समझने के लिए जैन साहित्य का अध्ययन परमावश्यक है।

जैन विद्वानों ने अपनी साहित्य साधना प्रायः सादर ही साथ प्राकृत, संस्कृत, कन्नड़, तामिल तथा अपभ्रंश भाषाओं में की। कितने ही जैन ग्रन्थ-

पांडुरंग, प्र० निर्णय सागर प्रेस बम्बई, भा० स०, पृ० ३५०, व० १९०३।

तिलोय पण्णत्ति (त्रिलोक प्रज्ञप्ति प्रथम खंड)—ले० यतिवृषभाचार्य, सपा० डा० ए० एन० उपाध्याय तथा—प्रो० हीरालाल जैन, अनु० प० बाल चन्द्र शास्त्री, प्र० जैन सस्कृत सरक्षक सघ शोलापुर, भा० हि०, पृ० ५२९, व० १९४३, आ० प्रथम।

तीर्थङ्कर भक्ति—ले० पूज्यपादाचार्य, भा० स०, (दशभक्तयादि संग्रह मे प्र०।

तीर्थमाला अमोलकरत्न—ले० शीतल प्रसाद, भा० प्र० हि०, पृ० ३८, व० १८९३।

तीर्थ यात्रा दर्शक—ले० ब्र० गेबीलाल; प्र० दिग० जैन समाज कलकत्ता, भा० हि०, पृ० २७६ व० १९२८, आ० प्रथम।

तीर्थ यात्रा दर्शक—प्र० चन्द्रराज शेट्टि व वर्धमान हेग्गडे पुत्तूरु (कन्नड)।

तीस चौबीसी पूजा—ले० कविवर वृन्दावन जी, सपा. मुन्नालाल काव्य-तीर्थ, प्र० जिनवाणी प्रचारक कार्यालय कलकत्ता, भा० हि०, पृ० ३७१, व० १९१७, आ० प्रथम।

तीस चौबीसी विधान और समाधिमरण—ले० प० हजारीलाल वैद्य, भा० हि०, पृ० १४, व० १९३५।

तीन पुष्प—ले० कैलाश चन्द्र शास्त्री, प्र० शारदा सहेली सघ देहली, भा० हि०, पृ० ३२०, व० १९४४।

तेरह द्वीप पूजन विधान—ले० कवि श्रीलाल जी, प्र० दिग० जैन पुस्तकालय सूरत, भा० हि०, पृ० ३२८, व० १९४३, आ० द्वितीय।

त्याग मीमांसा—ले० प० दीपचन्द वर्णी, प्र० कोठारी मणिलाल चुन्नीलाल, भा० हि०, पृ० २८, व० १९२८, प्र० जौहरीमल जैन सर्राफ देहली, पृ०३३ व० १९३१, आ० द्वितीय।

थ्येट्रीकल जैन भजन मंजरी—ले० प० न्यामतसिंह, प्र० स्वय हिसार, भा० हि०, पृ० २२, व० १९१२, आ० तीसरी।

दम्पति सुख साधन (प्रथम भाग)—ले० पन्नालाल बाकलीवाले, प्र० जैन हितैषी पुस्तकालय बम्बई, भा० हि०, व० १६०१।

दम्पति सुख साधन (द्वितीय भाग)—ले० पन्नालाल बाकलीवाले, प्र० जैन हितैषी पुस्तकालय बम्बई, भा० हि०, व० १६०१।

दयानन्द चरित्र दर्पण—ले० जीयालाल जैनी, प्र० चित्र विनोद पुस्तकालय फर्रुखनगर, भा० हि०, पृ० २६१, व० १८६४, प्रा० प्रथम।

दयानन्द छल कपट दर्पण—ले० प० जीयालाल ज्योतिषी, प्र० स्वयं. भाषा हिन्दी, पृष्ठ २६१, वर्ष १८६०, आ० प्रथम।

दयानन्द छल कपट दर्पण—लेखक पडित जीयालाल ज्योतिषी, प्रकाशक कामताप्रसाद दीक्षित अमरौधा (कानपुर), भाषा हिन्दी, पृष्ठ ३२४, व० १६३०, आ० द्वितीय।

दया स्वीकार माँस तिरस्कार—ले० बुधमल पाटनी, प्र० भारत धर्म महामंडल लखनऊ, भा० हि०, पृष्ठ १०२, व० १६१४, आ० प्रथम।

द्यानत पद संग्रह—ले० कवि द्यानतराय, प्र० जिनवाणी प्रचारक कार्यालय कलकत्ता, भा० हि०, पृ० ४८।

दश व्रत नाटक—प्र० जिनवाणी प्रचारक कार्यालय कलकत्ता, भा० हि०।

दर्शन और आरती—प्र० ला० शिवरामसिंह जैन रोहतक, भा० हि०, पृ० २६; व० १६३५, आ० द्वितीय।

दर्शन कथा—ले० कवि भारामल्ल, प्र० भारतीय जैन सिद्धान्त प्रकाशनी संस्था कलकत्ता, भा० हि०, पृ० ४६।

दर्शन कथा—ले० कवि भारामल्ल, प्र० जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई, भा० हि०, पृ० ६७, व० १६१६, आ० चतुर्थ।

दर्शन कथा—ले० कवि भारामल्ल; प्र० ला० ज्ञानचन्द जैनी लाहौर. भा० हि०, पृ० ७४, व० १६१२।

दर्शन कथा (सचित्र)—ले० कवि भारामल्ल, प्र० जिनवाणी प्रचार—

कार्यालय कलकत्ता, भा० हि०, पृ० ५७, व० १९३६, आ० प्रथम।

दर्शन कथा (बड़ी-पद्य)—ले० कवि भारामल्ल, प्र० पूरनमल जैन शमसाबाद, (आगरा); भा० हि०, पृ० ६४, व० १९४२, आ० द्वितीय।

दर्शन प्राभृत—ले० कुन्दकुन्द, टी० श्रुतसागर, भा० प्रा० स०, (षटप्राभृतादि सग्रह मे प्र०)।

दर्शन पाठ—ले० दौलतराम व बुधजन जी, प्र० जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय बम्बई, भा० हि०; पृ० १६, व० १९३०।

दर्शन पाहुड—ले० कुन्दकुन्द, भा० प्र०, (अष्ट पाहुड व षट पाहुड संग्रह मे प्र०)।

दर्शन सार—ले० देवसेनाचार्य; टी० सपा० पं० नाथूराम प्रेमी, प्र० जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई।

दर्शन प्रतीक्षा—ले० प्रेमी सहारनपुरी, प्र० प्रेमभवन पुस्तकालय, सहारनपुर, भा० हि०, पृ०२४, आ० प्रथम।

दर्श महिमा—ले० प्रेमी सहारनपुरी, प्र० प्रेम भवन पुस्तकालय सहारनपुर; भा० हि०, पृ० २४ आ० प्रथम।

द्रव्य दर्पण—ले० पं० अजितकुमार शास्त्री, प्र० चैतन्य प्रिंटिंग प्रेस बिजनौर, भा० हि०; पृ० ३९; व० १९३०, आ० प्रथम।

द्रव्य संग्रह—ले० नेमिचन्द सि० च०, टी० बा० सूरजभान वकील, प्र० टी० स्वय देवबंद, भा० प्रा० हि०, पृ० ८१, व० १९०९।

द्रव्य संग्रह—ले० नेमिचन्द्राचार्य, अनु० पं० सतीशचन्द्र, प्र० जिनवाणी प्रचारक कार्यालय कलकत्ता; भा० प्रा० हि०, पृ० ३६; व० १९२६, आ० प्रथम।

द्रव्य संग्रह—ले० नेमिचन्द्राचार्य, टी० बा० सूरजभान वकील, प्र० जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय बम्बई; भा० प्रा० हि०, पृ० १२४; व० १९२६; आ० प्रथम।

द्रव्य संग्रह—ले० नेमिचन्द्राचार्य, पद्यानुवाद-द्यानतराय, टी० सपा०

पं० पन्नालाल बाकलीवाल; प्र० जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई, भा० प्रा० हि०; पृ० ५८, व० १९१४. आ० चतुर्थ।

द्रव्य संग्रह—ले० नेमिचन्द्राचार्य, टी० संपा० प० भुवनेन्द्र विश्व, प्र० जिनवाणी प्रचारक कार्यालय कलकत्ता; भा० प्रा० हि०; पृ० ६६, व० १९३८; आ० द्वितीय।

द्रव्य संग्रह (हिन्दी दोहा बद्ध)—ले० मा० भुलनारसिंह, अनु० मैना सुन्दरी; प्र० दि० जैन पुस्तकालय मुजफ्फरनगर, भा० हि०, पृ० ६८; व० १९४३।

द्रव्यानुयोग तर्कणा— ले० भोज कवि, अनु० ठाकुरप्रसाद शर्मा, भा० सं० हि०; पृ० २६०, व० १९०५।

दश आरती भाषा—प्र० बा. सूरजभान वकील देवबंद; भाषा हिन्दी, व० १८९८।

दश भक्ति —संग्रह मुनि श्रुतसागर, प्र० जैन मित्र मण्डल देहली, भाषा हिन्दी, पृ० ४३, व० १९३२।

दश भक्त्यादि संग्रह—ले० आचार्य पूज्यपाद; टी० पण्डित लालाराम, प्र० रावजी सखाराम दोशी शोलपुर; भा० ० हि०; पृ० २००; व० १९३३, आ० प्रथम।

दशलक्षण धर्म—ले० पण्डित सदासुख जी; भाषा हिन्दी।

दशलक्षण धर्म—ले० पण्डित दीपचन्द वर्णी, प्र० दिगम्बर जैन पुस्तकालय सूरत, भा० हि०; पृ० १३५, व० १९४२; आ० चतुर्थ।

दश लक्षणधर्म पूजा—ले० पण्डित जिनेश्वरदास, प्र० मोतीलाल जैन देहली, भा० हि० पृ० ४२; व० १९२५।

दश लक्षण धर्म संग्रह—ले० पण्डित रइधु कवि; प्र० जैन धर्म प्रचारक पुस्तकालय वर्धा; भाषा प्रा०, पृष्ठ ६४, आ० प्रथम।

दश लक्षण धर्म संग्रह (धर्म अनुयोगध्यान)—ले० पण्डित पन्नालाल जैन प्रा० प्रा०, प्र० जिनवाणी प्रचारक कार्यालय कलकत्ता, भा० हि०, पृ० ४१।

दस्सा पूजाधिकार विचार—ले० स्फुलिङ्ग; प्र० जमनाबाई जबलपुर, भा० हि०, पृ० ३६, व० १६३६, आ० द्वितीय।

दस्साओं का पूजाधिकार—ले० पण्डित परमेष्ठिदास, प्र० जौहरीमल जैन सर्राफ देहली, भा० हिन्दी; पृ० ३०; व० १६३५; आ० प्रथम।

दस्तूर अमल अग्रवाल सभा सहारनपुर—भाषा हिन्दी।

दस्तूर अमल जैन बिरादरी मेरठ—प्र० जैन बिरादरी मेरठ शहर, भाषा हिन्दी, व १६२७।

द्वादशानुप्रेक्षा—ले० सोमदेव सूरि; टी० प० लालाराम, प्र० भारतीय जैन सिद्धांत प्रकाशनी सस्था कलकत्ता, भा० स० हि०, पृ० ५७ आ प्रथम।

द्वादशानुप्रेक्षा—ले० शुभचन्द्राचार्य, टी० प० जयचन्द छाबडा, प्र० जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई, भा० स० हि०; पृ० ८०, व० १६०५, आ० प्रथम।

द्वादशानुप्रेक्षा—प्र० जयचन्द्र श्रावणे वर्धा, भाषा हिन्दी, पृष्ठ ४३, व० १८६८, आ० प्रथम।

द्वादशानुप्रेक्षा—प्र० जैन ग्रंथ भडार सागर, भा० हि०, पृ० ७६, व० १६२८, आ० प्रथम।

द्वादशानुप्रेक्षा व बारह भावना—ले० दयाचन्द गोयलीय, प्र० सद्बोध रत्नाकर कार्यालय सागर, भा० हिन्दी, पृष्ठ ७४, व० १६१४, आ० प्रथम।

द्वात्रिंशतिका—ले० अमित गति सूरि, भाषा संस्कृत, पृष्ठ १०६, (तत्त्वानुशासनादि सग्रह मे प्र०)।

द्विसंधानम्—ले० कवि धनजय, स० टी० बद्रीनाथ, सम्पादक पंडित काशीनाथ शर्मा व पण्डित शिवदत, प्रकाशक निर्णय सागर प्रेस बम्बई, भा० स०, पृ० २२६, व० १८६५, आ० प्रथम।

दान कथा—ले० बख्तावर मल रतनलाल, प्र० जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई भा० हि०।

दान कथा—प्र० जिनवाणी प्रचारक कार्यालय कलकत्ता, भा० हि०, पृ० ४२।

दान का फल अथवा सती चन्दन बाला नाटक—ले० शेरसिंह नाज, प्र० प्यारे लाल देवी सहाय देहली, भा० हि०, पृ० २०७, व० १९२७, आ० प्रथम।

दान विचार—ले० क्षुल्लक ज्ञान सागर, प्र० रतनलाल जैन मादिपुरिया देहली, भा० हि०, पृ० २०२, व० १९३२, आ० प्रथम।

दान विचार समीक्षा—ले० पण्डित परमेष्ठिदास, प्र० जौहरीमल जैन सर्राफ देहली, भा० हि०, पृष्ठ ८०, व० १९३३, आ० प्रथम।

दानवीर सेठ माणिकचन्द्र—ले० ब्र० शीतल प्रसाद, प्रकाशक दिगम्बर जैन पुस्तकालय सूरत, भा० हिन्दी, पृ० ९२०, व० १९१९, आ० प्रथम।

दानवीर सेठ हुकमचन्द का जीवन चरित्र—लेखक अज्ञात, भा० हि०।

दान शासन—लेखक महर्षि वासु पूज्य, टी० अनुवादक वर्द्धमान पार्श्व नाथ शास्त्री, प्रकाशक गोविन्द राव जी शोलापुर, भा० स० हि०, पृ० ३४०, व० १९४१, आ० प्रथम।

दिगम्बर मुनि—लेखक कामता प्रसाद जैन, प्र० जैन मित्र मंडल देहली, भा० हि०, पृ० ३२, व० १९३१ आ० प्रथम।

दिया तल अंधेरा—प्र० जैन ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय बम्बई; भा० हि०।

दीपमालिका विधान—संपादक मदनलाल जैन, प्रकाशक दोशी जयचन्द हेमचन्द ईडर, भा० हि० पृ० ३६; व० १९१३, आ० प्रथम।

दीपमालिका विधान—संग्रह संपादक ब्र० शीतल प्रसाद, प्रकाशक मूलचंद किसनदास कापड़िया सूरत, भा० हि०, पृ० १८; व० १९१७, आ० द्वितीय।

दिगम्बर जैन मूर्ति पूजा पर शंकाएं—लेखक प्र० गुलाबचन्द जैन पुरा, भा० हि०, पृ० १८, व० १९३९।

दिगम्बर मुद्रा की सर्वमान्यता—लेखक के० भुजबलि शास्त्री, प्रकाशक जैन सिद्धान्त भवन आरा, भा० हि०; पृष्ठ ३२।

दिगम्बर मुद्रा मंडन—लेखक पण्डित शिवचन्द, प्र० स्वयं देहली, भा० हि०; पृ० १७, व० १८९३; आ० प्रथम।